काव्य-ग्रन्थरत्न-माला—रत्न ५

रहीम-रत्नावली

(रहीम की आज तक की प्राप्त कविताओं का सब से बड़ा संग्रह)

सम्पादक

स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक बी. ए.

प्रकाशक—

साहित्य-सेवा-सदन,

काशी ।

तृतीयावृत्ति] [मूल्य १॥)

व्यवस्थापक
गोपालदास सुन्दरदास 'सेवक'
साहित्य-सेवा-सदन,
काशी

साहित्य-सम्मेलन, विशेष योग्यता, और महिला विद्यापीठ की परीक्षाओं की पुस्तकें तथा हिंदी और संस्कृत साहित्य की सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—

साहित्य-सेवा-सदन,
बनारस

मुद्रक—
ना० रा० सोमण
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी।

प्रकाशकीय निवेदन

आज से कोई चार वर्ष पूर्व हमने उस समय तक की प्राप्त रहीम की कविताओ का एक संग्रह रहिमन-विलास के नाम से प्रकाशित किया था। हिन्दी-संसार ने उसे अपनाया, और उसका पहला संस्करण आठ दस महीने में ही चुक गया।

कहा जाता है कि बिहारी, मतिराम, वृन्द आदि कवियों की भाँति रहीम ने भी एक "सतसई" लिखी है। रहीम की इस सतसई तथा उनकी अप्रकाशित और अप्राप्त रचनाओ की खोज हम अपने रहिमन-विलास के प्रकाशन के बाद से ही बराबर करते रहे। इसके लिये हमे अपने एक मित्र को पटना, जयपुर आदि कई जगह भेजना पड़ा। भरतपुर मे, सयोगवश, हिन्दी-साहित्य-संसार के चिर-परिचित पंडित मयाशकरजी याज्ञिक से उनकी भेंट हुई। याज्ञिकजी ने हस्त-लिखित पुस्तकों का अपना बृहत् संग्रहालय उन्हे दिखाया। उस संग्रहालय में रहीम के दो नवीन और अप्रकाशित ग्रंथ तथा उनकी कुछ फुटकर रचनाएँ मिलीं। तभी से हमने इनके लिये याज्ञिकजी से तक़ाजा करना आरम्भ कर दिया। बाद मुद्दत के इन ग्रथो और रचनाओं का संग्रह, जिसके अन्तर्गत उक्त रहिमन-विलास की भी रचनाएँ है, सम्पादित रूप मे हमें प्राप्त हुआ, और हमने उसे छापना शुरू किया। बीच

स्थायी ग्राहक संख्या.........

साहित्य-सेवा-सदन, काशी।

श्रीहरिः

भूमिका

प्राक्कथन

अकबर के राजत्वकाल में मुग़ल-साम्राज्य का विस्तार हुआ और उसके साथ ही राजा-प्रजा को शान्तिपूर्ण जीवन-निर्वाह का अवसर भी मिला। सम्राट् अकबर को युद्धक्षेत्रों में बहुत काल तक व्यस्त रहना पड़ा, परन्तु उसके प्रताप से साम्राज्य मे, और विशेप कर राजधानी मे, ऐसी सुव्यवस्था हो गई थी कि साहित्य, कला, इतिहास, धर्म, राजनीति आदि विषयों की ओर लोगों को ध्यान देने का अवकाश मिल सका था। हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर सद्भाव की जागृति होने लगी थी और दोनों की सभ्यता, विचार, धर्मनीति में घोर संघर्षण के स्थान में शान्तिपूर्ण प्रभाव पड़ने लगा था। क्रूरकर्मा यवन जाति से विजित हिन्दू प्रजा अपनी सभ्यता और धर्म की रक्षा करने में नितान्त असमर्थन हो चली थी; परन्तु अपने साम्राज्य को सुदृढ़ करने के लिये मुग़लों ने हिन्दुओं के साथ व्यवहार बदलना नीतिपूर्ण समझा। इसका फल यह हुआ कि अकबर की उदार नीति ने हिन्दुओं के आचार और धर्म को तिरस्कार की दृष्टि से न देख कर उन्हें पुनः जागृत होने का अवसर दिया। हिन्दुओं ने भी इसका पूर्ण लाभ उठाया। अकबर ने स्वयं संस्कृत ग्रंथों का फारसी भाषान्तर कराया। शास्त्रीय गान-विद्या का प्रचार हुआ। कला की भी उन्नति हुई। और हिन्दू प्रजा के मन से पददलित और विजित होने का भाव कम होने लगा। परन्तु सब से महत्त्व की बात जो इस काल में हुई वह

हिन्दी काव्य की उन्नति थी। अकबरी दरबार के नवरत्न इतिहास में प्रसिद्ध हैं। उनमें से कई हिन्दी के उत्तम कवि थे और कवियों के आश्रयदाता थे। हिन्दी हिन्दुओं की भाषा थी इसलिये राजदरबार में वह अनादृत नहीं थी। वरन् वह हिन्दू और मुसलमान दोनों की भाषा थी। अकबर स्वयं हिन्दी में कविता करता था और उसकी फुटकर कविताएँ अब भी मिलती हैं। दूसरे, वैष्णव धर्म के प्रचार से भी हिन्दी भाषा की अपूर्व उन्नति हो रही थी। भक्ति-भाव भाषा रूप में व्यक्त होकर व्रजभूमि से उमड़ कर दूर देशों को भी प्लावित करने लगा था। सूर और अष्टछाप से अन्य कवि इसी समय भाषा को अलंकृत कर रहे थे। तुलसी की प्रतिभा इसी काल में अपनी अद्वितीय ज्योति दिखा गई। ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न कवियों ने हिन्दी को एक सर्वोच्च और समुन्नत भाषा बना दी। उर्दू का जन्म हो चुका था और मुसलमानी राज्य में फारसी का आदर होना स्वाभाविक ही था। परन्तु उस काल में हिन्दी की जो उन्नति हुई वह अन्य किसी भाषा की न हुई। यदि राजा टोडरमल एक भारी भूल न कर देते, तो संभव है कि आज हिन्दू और मुसलमान अपनी दो अलग भाषा न कहते और हिन्दी ही सब की एक भाषा, साहित्य तथा बोलचाल की, होती। राजा टोडरमल ने फारसी को राजभाषा बनाया था। खेद है कि एक हिन्दू ने भूल की, जिसका दुष्परिणाम आज देश भर को भोगना पड़ रहा है। फिर भी उस समय भाषा से किसी को द्वेष नहीं था। मुसलमान उसके साहित्य की वृद्धि करने में संकोच नहीं करते थे। पर, आज कितने थोड़े मुसलमान हैं जो हिन्दी जानते हैं वा उसके साहित्य को समझते हैं! आज तो 'हिन्दू' की तरह 'भाषा' शब्द ही उनके लिये तिरस्कार योग्य है।

अकबर के समय से पूर्व ही भाषा के बलवती और समुन्नत होने के साधन उत्पन्न हो चुके थे। चन्द, अमीर खुसरो, कबीर, नानक, जायसी, बाबा गोरखनाथ आदि ने अपनी रचनाओं से काव्य के विशेष अंगों की पुष्टि कर दी थी। परन्तु अकबर के समय में जो उन्नति अल्पकाल में ही हुई वह फिर भी आश्चर्यजनक है। वीरगाथा, प्रेमगाथा, धर्म, नीति और समाजसुधार के विचार इन कवियों ने भली प्रकार भाषा में व्यक्त कर दिये थे। अकबर के काल में हिन्दू वीरता के गुणगान का पूर्ववत् उत्साह तथा समय बीत चुका था। वीरगाथा के दिन निकल चुके थे। मुसलमानों के प्रभाव से प्रेमगाथा की ओर रुचि विशेष हो गई थी। वीर रस के स्थान में शृंगार का प्राधान्य हो गया था। और धार्मिक भावों में भक्ति का स्रोत उमड़ चला था। हिन्दू और मुसलमान-सभ्यता के संघर्षण से कबीर और नानक की वाणी प्रवाहित हुई। इन्हीं कारणों से अकबर के समय से पूर्व ही हिन्दी का रूप ऐसा बन चुका था कि सुअवसर पाते ही उसमें प्रौढ़ता आ गई और उसकी श्रीवृद्धि में अनेक हिन्दू और मुसलमान प्रतिभा-सम्पन्न कवियों ने भाग लिया।

इन्हीं में से नवाब अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना—हिन्दी जगत के विख्यात रहीम वा रहिमन—हुए जिनका व्यापक पाण्डित्य, अनेक भाषाओं में काव्य रचना की क्षमता और विशेष कर हिन्दी साहित्य की सेवा बड़े महत्त्व की थी।

कविपरिचय

नवाब अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना का जन्म संवत् १६१३ वि० में लाहौर में हुआ था। इनके पिता का नाम बैराम खाँ ख़ानख़ाना था और माता जमाल ख़ाँ मेवाती की छोटी बेटी थी। उसकी

बड़ी बेटी से हुमायूँ ने स्वयं विवाह किया था। बैराम ख़ाँ छोटी अवस्था से ही हुमायूँ बादशाह के दरबार में रहने लगा था और धीरे धीरे अपनी कार्य-कुशलता से बड़ा सरदार और बादशाह का विश्वस्त आदमी बन गया था। कन्नौज की लड़ाई में बैराम ख़ाँ ने बड़ी वीरता दिखाई थी। जब हुमायूँ हार कर फ़ारिस भाग गया तो बैराम ख़ाँ भी बादशाह से वहाँ जा मिला और फिर भारत पर चढ़ाई कर उसने हुमायूँ को राज्य दिलवाया। बैराम ख़ाँ के युद्ध-कौशल और पराक्रम के कारण मुग़ल वंश ने फिर एक बार भारत का साम्राज्य प्राप्त किया। हुमायूँ ने प्रसन्न होकर युवराज अकबर की शिक्षा का भार भी बैराम ख़ाँ को ही सौंपा और अपने अन्त समय पर राज्य-प्रबन्ध भी बैराम ख़ाँ को देकर अकबर का अभिभावक नियुक्त किया।

अकबर के शत्रुओं को भी बैराम ख़ाँ ने परास्त किया और मुग़ल साम्राज्य को सुदृढ़ कर दिया। परन्तु अकबर जब बड़ा हुआ और राजकाज स्वयं सँभालने लगा तो बैराम ख़ाँ का हस्त-क्षेप उसे पसंद न आया। दोनों में मनोमालिन्य हो गया और अन्त में बात यहाँ तक बढ़ी कि बैराम ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। अकबर उदार प्रकृति का मनुष्य था। बैराम ख़ाँ को उसने क्षमा प्रदान की, परन्तु हज्ज के लिए जाने को बाध्य किया। एक राज्य में दो अधिपति भला कैसे रह सकते थे? अकबर और बैराम ख़ाँ के झगड़े क़ैसर और बिस्मार्क के मनोमालिन्य की याद दिलाते हैं।

बैराम स्त्री पुत्र सहित हज्ज को जाते समय मार्ग में पाटन में ठहरा। वहाँ एक अफ़ग़ानी ने पुरानी शत्रुता के कारण अवसर पाकर उसको मार डाला। उस समय अब्दुर्रहीम की अवस्था केवल ४ वर्ष की थी। अकबर को यह समाचार

मिला तो उसने तुरन्त बालक और उसकी मा को आगरे बुला भेजा। अब्दुर्रहीम को एक होनहार बालक जान कर अकबर ने उसे अपने पास ही रक्खा और शिक्षा का अच्छा प्रबंध कर दिया। तीव्र बुद्धि बालक ने विद्या प्राप्त करने में पूर्ण परिश्रम किया और अरबी, फ़ारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी भाषा का अच्छी प्रकार अभ्यास कर लिया।

अकबर ने ही इनका विवाह भी खाने आज़म की बहिन माहबानू बेगम से कर दिया। जब बादशाह ने गुजरात पर चढ़ाई की तो ये भी साथ गये और वहां पाटन की जागीर प्राप्त की। दूसरी बार फिर गुजरात की लड़ाई में रहीम गये तो वहां की सूबेदारी मिली। युद्ध का अनुभव, विजय और उच्चपद तथा जागीर सभी मिले और भाग्य का उदय हुआ। फिर मेवाड़ की लड़ाई में इनको जाने की आज्ञा हुई। दो वर्ष तक मेवाड़ में रहे और अन्त में जब उदयपुर को जीत लिया तो बादशाह ने दरबार में बुला कर मीर अर्ज़ का ऊँचा ओहदा दिया जो अत्यन्त विश्वासपात्र सरदार को दिया जाता था। थोड़े दिन बाद अजमेर की सूबेदारी खाली हुई। वह भी बादशाह ने इनको दे दी और साथ में रणथम्भौर का किला भी दिया। कुछ समय बाद बादशाह ने रहीम को शाहजादे सलीम का शिक्षक नियत किया। शिक्षक का कार्य करने में जो समय मिलता था उसमें 'वाक़यात बाबरी' का तुर्की भाषा से फ़ारसी में अनुवाद किया जो अकबर को बड़ा पसन्द आया और जौनपुर का इलाका इसके इनाम में रहीम ने पाया।

जब अकबर ने पहिली बार गुजरात को जीता था तो मुज़फ्फर सुलतान को बन्दी कर लिया था। मुज़फ्फर किसी प्रकार निकल भागा और सेना एकत्र कर फिर गुजरात में उत्पात

मचाने लगा। विद्रोह शान्त करने के लिए रहीम को फिर भेजा गया। इस बार विजय प्राप्त करना सहज नहीं था—रहीम इस बात को जानते थे। अहमदाबाद भी मुज़फ्फर के हाथ आ चुका था। रहीम ने थोड़ी सी सेना लेकर ही युद्ध छेड़ दिया। अहमदाबाद से तीन मील दूरी पर युद्ध हुआ और रहीम ने स्वयं अद्भुत पराक्रम, वीरता और निर्भीकता का परिचय दिया। मुज़फ्फर को, अधिक सेना होने पर भी, भागते ही बना और उसने खम्भात में जाकर शरण ली। एक बार फिर सर उठाने पर रहीम ने उसको जंगलों में ही प्राण-रक्षा के लिए भटकते छोड़ा। इस विजय से रहीम का यश और भी अधिक बढ़ गया। अकबर ने ख़ानख़ाना की पदवी से विभूषित किया और पाँच हज़ारी मनसब भी दिया। इस प्रकार रहीम ने अपने पिता की पदवी प्राप्त कर ली। इस युद्ध के पूर्व रहीम ने प्रतिज्ञा की थी कि विजय लाभ करने पर वे अपना सब कुछ बाँट देंगे। किया भी वैसा ही। यहाँ तक कि बचा हुआ कलमदान भी दे डाला। इसके बाद बादशाह ने जौनपुर की जागीर भी उनको दी और मुग़ल साम्राज्य का सबसे ऊँचा पद अर्थात् वकील भी, जो राजा टोडरमल की मृत्यु से खाली हुआ था, ख़ानख़ाना को दिया गया। बैराम खाँ को भी यह पद प्राप्त था।

रहीम ने अवसर निकाल कर 'तुज़के बाबरी' का, जिसमें बाबर बादशाह ने तुर्की भाषा में अपना जीवन-चरित्र लिखा था, फ़ारसी में अनुवाद कर लिया था। अकबर जब काश्मीर और काबुल से लौट रहा था तो रहीम ने अनुवाद पेश कर सुनाया। बादशाह अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर रहीम को सिंध विजय के लिए जाना पड़ा। वहाँ भी उन्होंने विजय लाभ की। सिंध का जीतना मुज़फ्फर के विरुद्ध जो युद्ध किये थे उनसे किसी प्रकार

सहज नहीं था। रहीम भाग्यशाली और पराक्रमी थे। लड़ाई जीत कर आये और मुलतान की जागीर बादशाह से पाई।

अहमदनगर के सुलतान मर गये तो उनके राज्य में गड़बड़ी मची। अकबर ने सुलतान मुराद और खानख़ाना को दक्षिण भेजा। इन दोनों में न बनी। अहमदनगर में जीत तो शाही फौज की ही हुई, परन्तु परस्पर अनबन के कारण बड़ी कठिनाई हुई। बादशाह के बेटे से अनबन हो जाने के कारण रहीम के भाग्य ने भी पलटा खाया। जीत तो हो गई और खुशी में रहीम ७५ लाख रुपया भी लुटा बैठे, परन्तु यश नहीं मिला। उन्हीं दिनों इनकी बेगम का भी देहान्त हो गया। दक्षिण में उपद्रव शान्त न हो सका और रहीम को कई वार जाना भी पड़ा। खानदेश का सूबा बनाया गया और सुलतान दानियाल सूबेदार और खानखाना दीवान नियत किये गये। ख़ानख़ाना ने अपनी लड़की का विवाह दानियाल से कर दिया।

अकबर की मृत्यु होते ही दक्षिण ने फिर सर उठाया। मलिक अंबर ने औरंगाबाद बसा कर अहमदनगर भी छीन लिया। बादशाह जहाँगीर की आज्ञा पाकर खानख़ाना मुक़ाबले पर गये, परन्तु शाहजादा परवेज़ भी पीछे से मदद को भेजा गया। इन दोनों की परस्पर न बनी। लड़ाई में हार हुई। खानखाना पर दोष लगाया गया और वे दरवार में वापिस बुला लिये गये। कन्नौज और कालपी का विद्रोह शान्त कर ख़ानखाना फिर दक्षिण भेजे गये। साथ में इनका बड़ा लड़का शाहनवाज़ ख़ाॅ भी था जिसने मलिक अंबर को अच्छी तरह परास्त किया। वाद में शाहज़ादे ख़ुर्रम को भी दक्षिण जाना पड़ा। गोलकुंडा और बीजापुर के सुलतानों को अधीनता स्वीकार कर सन्धि करनी पड़ी। खानख़ाना को खानदेश, बरार और

अहमदनगर की सूबेदारी मिली और उनकी पौत्री से शाहजहाँ का विवाह हुआ। जब खानखाना दरबार में आए तो सात हजारी मंसब बादशाह ने दिया। उच्चपद की प्राप्ति तो हुई परन्तु थोड़े दिनों में ख़ानख़ाना का बड़ा लड़का शराबी होने के कारण मर गया और फिर दूसरे पुत्र का भी देहान्त हो गया। ख़ान-खाना के भाग्य ने पलटा खाया। नूरजहाँ ने चाल चल कर परवेज को युवराज पद दिला दिया और ख़ानख़ाना का पद महावत खाँ को दिलवाया। शाहजहाँ और खानख़ाना ने विद्रोह किया और जहाँगीर ने परवेज़ को दमन के लिए भेजा। ख़ान-ख़ाना ने शाहजहाँ को धोखा दे कर महावत खाँ से छिप कर मेल करना चाहा। भेद खुलने पर शाहजहाँ ने ख़ानख़ाना को बन्दी कर लिया। किसी तरह क्षमा प्रार्थना कर शाहजहाँ का फिर साथ दिया, परन्तु ख़ानखाना का विश्वास किसी को न रहा। परवेज से मेल की बातचीत करने गये तो फिर शाहजहाँ को धोखा दे कर महावत खाँ से जा मिले। शाहजहाँ को भागना पड़ा परन्तु खानखाना के लड़के को अपने काबू में रखा। उधर महावत खाँ को भी ख़ानखाना पर विश्वास नहीं था, उसने इन्हें कैद कर लिया। जहाँगीर ने किसी प्रकार ख़ानख़ाना को छुड़ाया और फिर कृपा कर उनको क्षमा प्रदान की और इनको पदवी और मंसब भी दे दिये।

नूरजहाँ ने महावत खाँ को भी अप्रसन्न कर दिया और जब वह विद्रोही हो गया तो खानख़ाना को उस पर चढ़ाई करने भेजा। महावत खाँ ने अवसर पा कर जहाँगीर को पकड़ लिया था। परन्तु ख़ानखाना महावत पर चढ़ाई करने के पहिले ही दिल्ली में मर गये। यह घटना सं० १६८६ वि० में हुई जब रहीम की अवस्था ७२ वर्ष की थी।

खानखाना का समय विशेष कर लड़ाइयों में ही बीता। अकबर के समय में गुजरात, सिंध और बीजापुर की लड़ाइयों को जीत कर खानखाना ने बड़ा ही पराक्रम दिखाया था। प्रतिष्ठा और राज्य सम्मान भी प्राप्त किये थे। जहाँगीर के समय में वह बात नहीं रही। इन्होंने भी कई बार बेढब चाल चली। इनके चार पुत्र थे। वे इनके जीतेजी ही मर गये थे। राजनैतिक हलचलों में भाग लिये बिना खानखाना को दूसरी गति नहीं थी और इसी कारण जागीर, पद आदि प्राप्त होने पर भी इनका जीवन सुखमय नहीं रहा।

ख़ानख़ाना का मकबरा दिल्ली में है। परन्तु उसकी भग्नावस्था देख कर चित्त को क्लेश होता है कि रहीम जैसे अनेक गुण-सम्पन्न दानी की क़ब्र के पत्थर तक लोग निकाल कर ले गये। काल की गति विचित्र है!

इनका विस्तृत जीवन-चरित्र मुन्शी देवीप्रसाद कृत ख़ान-ख़ाना नामा में दिया हुआ है। हिन्दी में इसके सदृश दूसरी ऐतिहासिक जीवनी नहीं है।

ख़ानख़ाना में अनेक गुण थे। जो बहादुरी और वीरता इन्होंने छोटी अवस्था से ही रणक्षेत्र में दिखलाई उससे अकबर भी चकित हो गया था। इतनी थोड़ी अवस्था में ऐसा युद्ध-कौशल दिखलाया कि जब कभी संकट आकर पड़ा तो अकबर ने इन्हीं पर भरोसा किया। अपने गुणों के कारण इनको यश और सम्मान दोनों ही प्राप्त हुए। धन भी इनके पास अटूट था। देश में कई जगह इनकी जागीरें थी। राजसी ठाठ से रहना इनको पसंद था और वैसे ही रहते भी थे। महल, उद्यान और हम्माम इन्होंने जगह-जगह बनवाये थे। जैसे धनी थे वैसे ही दानी भी थे। उदारता इतनी बढ़ी हुई थी कि ख़ानख़ाना एक

आदर्श दानी समझे जाते थे। शौर्य से अधिक प्रशंसा इनकी दान-वीरता की थी। समस्त देश में इनके दान की महिमा सुनाई देती थी। गुणीजनों का आदर भी इनके यहाँ खूब होता था। इतिहास में इस बात के कई उदाहरण भी मिलते हैं। ऐसे महा-पुरुष का भी जीवन सुखी न रहा! इनके एक लड़के का सिर तो तरबूज़ की तरह काट कर भेंट किया गया था। बाकी और इनके जीते ही मर गये थे। राज्य-तृष्णा ने इन्हें बढ़ा चढ़ा कर भी गिराया। यहाँ तक कि कई बार इनको अत्यन्त आर्थिक कष्ट भी सहन करना पड़ा और जागीरें भी छिन गईं। राज-सम्मान गया और बात भी गई। स्वामी-द्रोही भी होकर कलंकित हुए। मित्र शत्रु हो गये। दानी थे और फिर स्वयं निर्धन हो गये। भाग्य ने पलटा खाया तो कोई अपना न रहा। संसार का कडुवा अनुभव हुआ। ऐसे भाव और आत्मानुभव की बातें इनके दोहों में बहुत मिलती हैं और उनसे रहीम पर जो कुछ बीती थी उसका अनु-मान सहज में हो जाता है।

साहित्य-सेवा

जिस कारण ख़ानख़ाना का यश आज भी गाया जाता है और उनकी कीर्ति अमर हो गई है वह उनकी साहित्य-सेवा है। अकबर ने इनकी शिक्षा का बड़ा ही उत्तम प्रबन्ध किया होगा; क्योंकि केवल एक विद्वान बनने की इच्छा न तो ख़ानख़ाना की ही रही होगी और न अकबर को यह पसंद हुआ होगा कि रहीम को केवल विद्या से ही प्रेम रहे। आश्चर्य की बात है कि रहीम बड़े सेनापति, राजकार्य में दक्ष, अकबरी दरबार के नामी रत्न होते हुए भी ऐसे अच्छे विद्वान हो सके और संसार के बखेड़ों में लगे रहने पर भी उनका उत्कट विद्या-प्रेम बना रहा। ऐसे

पुरुष संसार में थोड़े ही मिलते हैं जिन्होंने कई कार्य-क्षेत्रों में ऐसी सफलता प्राप्त की हो और सदा के लिये अपनी कीर्ति स्थिर कर गये हों। खानखाना की असाधारण प्रतिभा का यह एक बड़ा प्रमाण है।

रहीम ने अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। उन्हें इन भाषाओं का केवल साधारण ज्ञान नहीं था, वे इनके साहित्य को अच्छी तरह जानते थे और इन भाषाओं में कविता भी करते थे। उनका पुस्तकालय प्रख्यात था और विद्वान लोग उनके व्यापक पाण्डित्य की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त रहीम ने शास्त्रों और दर्शनों का भी अध्ययन किया था। विद्वानों और कवियों का ऐसा आदर करते थे कि उनसे बढ़कर शायद ही किसी ने किया हो। स्वयं गुणी थे और दानी भी थे तो फिर गुणी जनों को उनसे पूर्ण उत्साह और सहायता मिले इसमें क्या आश्चर्य है! अनेक कवि उनके आश्रित थे। रहीम यदि स्वयं लेखक वा कवि न होते और कविजनों के आश्रयदाता ही रहे होते तो भी उनका नाम साहित्य-संसार में सदा के लिए स्मरणीय हो जाता। परन्तु उनका सा आश्रयदाता और कवियों के लिए मानप्रद कोई बादशाह भी नहीं हुआ। जितने कवियों ने रहीम की प्रशंसा लिखी है उतने कवियों ने अन्य किसी की महिमा नहीं गाई। गंग, प्रसिद्ध, मंडन, संत, लक्ष्मीनारायण, बाण आदि अनेक कवि रहीम के आश्रित थे और सब प्रकार से उनके कृतज्ञ भी थे। एक छप्पय पर गंग को रहीम ने ३६ लाख रुपये का इनाम दिया था सो प्रसिद्ध ही है। गोस्वामी तुलसीदासजी से भी रहीम का घनिष्ठ सम्बन्ध था और कविवर मतिराम की कृति पर रहीम की गहरी छाप है। केशव ने जहाँगीर-चन्द्रिका

रहीम के पुत्र एलच बहादुर के लिए रची थी। तुलसीदासजी का बरवे रामायण रहीम की प्रेरणा का फल है।

अब्दुलबाली नामक ईरानी ने 'मुआसिर रहीमी' नामक जीवनी भी रहीम के जीते जी लिखी थी। 'वाकयात बाबरी' का तुर्की से फ़ारसी अनुवाद अकबर के कहने से रहीम ने स्वयं किया था और इनाम में जागीर पाई थी। इनका फ़ारसी दीवान अभी मिला नहीं है, परन्तु फुटकर रचना प्रचलित है। कहते हैं कि यूरोपीय भाषाएं भी रहीम ने सीखी थीं और अकबर के लिए उन भाषाओं में पत्र भी लिख देते थे।

शिवसिंह-सरोज के पृष्ठ ४४४ (चौथा संस्करण) पर खानखाना के अतिरिक्त अन्य और एक रहीम कवि का उल्लेख है और लिखा है कि दास कवि ने अपने काव्यनिर्णय में इनका नाम एक कवित्त में दिया है। वह कवित्त इस प्रकार है—

सूर केशव मडन बिहारी कालिदास ब्रह्म,
चिन्तामणि मतिराम भूषण सो जानिये।
नीलकंठ नीलाधर निपट नेवाज निधि,
नीलकंठ मिश्र सुखदेव देव मानिये॥
आलम रहीम खानखाना रसलीन बली,
सुन्दर अनेक गन गनती वखानिये।
ब्रजभापा हेत ब्रज सब कीन अनुमान,
येते येते कविन की बानी हूते जानिये॥

इस कवित्त से दो रहीम होने का अनुमान करना ठीक नहीं है। शिवसिहजी के आधार पर मिश्रबन्धुविनोद में भी दो रहीम माने गये हैं।

'रहीम खानखाना' नाम एक ही व्यक्ति को सूचित करता है

न कि दो को। इसके अतिरिक्त काव्य-प्रयोजन के वर्णन में दास कवि ने लिखा है—

"एकन को रस ही को प्रयोजन है रसखान रहीम की नाईं"

यह उक्ति भी ख़ानख़ाना के अतिरिक्त किसी अन्य रहीम के लिए नहीं हो सकती। इस अन्य अनुमानित रहीम का एक ही पद्य शिवसिंह सरोज के पृष्ठ २७५ पर दिया गया है। परन्तु वह पद्य रहीम का नहीं है, अनीस कवि का है। और उसी ग्रंथ के 11 वें पृष्ठ पर अनीस के नाम से दिया भी गया है। अतएव अब्दुर्रहीम के अतिरिक्त अन्य किसी रहीम का अनुमान करना भ्रान्ति पूर्ण है। हिन्दी साहित्य में एक ही रहीम हैं और वे ख़ानख़ाना थे।

हिन्दी काव्य

रहीम ने हिन्दी भाषा को अपना कर अपनी कृति से उसके साहित्य की जैसी अतुल सेवा की है वैसी और किसी भाषा की नहीं की। रहीम कृत फारसी दीवान का पता नहीं चलता उस पर भी यह मान लेने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए कि हिन्दी के लिये जो रहीम ने किया और जैसा ममत्व इस भाषा पर दिखाया वैसा और किसी भाषा पर नहीं दिखाया। अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओं से किसी प्रकार हिन्दी का महत्त्व रहीम को कम नहीं दिखाई दिया। उसके माधुर्य पर मानो वे मुग्ध थे। केवल भाषा पर ही उनका अधिकार नहीं था, वे हिन्दू सभ्यता और हिन्दू धर्म को भी भली प्रकार समझ गये थे और उनके लिये रहीम को बड़ा आदर रहा होगा। कविता में कहीं एक शब्द हिन्दू समाज वा हिन्दू धर्म के विरुद्ध नहीं मिलता। उनके देवता तथा धार्मिक

विचारों का उल्लेख मिलता है, परन्तु कहीं तिरस्कार बुद्धि से नहीं। यह बात बड़े महत्त्व की है। अवतारों के नाम, महादेवजी, गंगाजी की महिमा आदि से स्पष्ट प्रतीत होता है कि रहीम का भाव हिन्दुओं के प्रति घृणा का नहीं था। हिन्दू धर्म के प्रति अतुल श्रद्धा थी और वैष्णव धर्म के अनुयायी तथा श्रीकृष्ण के वे भक्त थे—ऐसा लिखा भी मिलता है परन्तु इसके लिये कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। यह बात बिना संकोच के मानी जा सकती है कि हिन्दी के मुसलमान कवियों और लेखकों में तो रहीम का स्थान बहुत ऊँचा है ही और समस्त कवियों में भी यदि उनकी गणना साहित्य के नवरत्नों में नहीं है तो चतुर्दश रत्नों में अवश्य है।

रहीम केवल मनोरंजन के लिये कविता रचते थे और इसमें वे अवश्य ही सफल मनोरथ हुए हैं। रहीम के दोहे बालकों को भी याद हैं। उनकी कविता सरस, मधुर और नीति-पूर्ण है। साधारण बोलचाल के शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। भाषा प्रायः ब्रज की है और कहीं अवधी या दोनों का मिश्रण है। भाव या भाषा में बनावट या खचातानी कहीं नहीं है। सहज स्वाभाविकता है। जनसाधारण में जैसी कविता का आदर होता है उसके गुण इनके काव्य में हैं। समय की रुचि का पता इनकी कविता से चलता है। कुछ कविता इनकी ऐसी है जो सब को सदा ही पसन्द आवेगी। रहीम को संसार का बड़ा अनुभव प्राप्त था। यह बात नीति की बातों से स्पष्ट है। शृंगार रस का प्राधान्य है, यह समय की रुचि के अनुसार है। कहीं मृदु हास्य की झलक भी दिखाई देती है तो कहीं संतप्त हृदय के उद्गार भी हैं, वाक्य में रस तो हैं परन्तु अर्थ गौरव और भावों की गहनता का अभाव सा है।

उदाहरण बड़े ऊँचे हुए हैं और हिन्दू-विचारों की पूरी जानकारी के साक्षी हैं। समस्त जीवन तो रहीम ने युद्धक्षेत्र में बिताया परन्तु वीर रस की कोई कविता नहीं रची। दूसरी बात आश्चर्य की यह भी है कि किसी भी ऐतिहासिक घटना का वर्णन वा उल्लेख इन्होंने नहीं किया। अपनी परिवर्तित दशा और संसार के कड़ुवे अनुभव तो व्यक्त किये हैं परन्तु किसी घटना विशेष का हवाला नहीं दिया।

ऐसा जान पड़ता है कि मन में तरंग उठी तो कुछ लिख देते थे। कल्पना वा विचार पर परिश्रम की छाप नहीं दिखाई देती। कविता को सुन्दर वा गम्भीर बनाने का कुछ प्रयास किया हो ऐसा भी नहीं जान पड़ता। परन्तु प्रतिभा और कवित्व शक्ति अच्छी थी इसमें कोई सन्देह नहीं और भाषा पर तो प्रशंसनीय अधिकार प्राप्त था।

रहीम-रचित ग्रन्थ

१. **दोहावली**—ऐसा कहा जाता है कि रहीम ने एक पूरी सतसई लिखी थी। परन्तु उसका पता अभी तक हिन्दी संसार को नहीं चला है। इसीलिए कोई पूर्ण संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ। जितने प्रकाशित और अप्रकाशित दोहे हम को मिले हैं वे सब इस पुस्तक में संग्रहीत हैं। सतसई का इतना ही भाग अभी तक प्राप्त समझना चाहिए। कई हस्तलिखित पुस्तकों में से फुटकर दोहे मिले हैं और पाठ भी मिले हैं। फिर भी कई दोहे संदिग्ध हैं। कुछ दोहों का पाठ ठीक नहीं है और अर्थ भी ठीक नहीं बैठता। जब तक खोज में किसी को और अधिक सामग्री न मिले इन संदिग्ध दोहों का पाठ शुद्ध न हो सकेगा। कुछ दोहे ऐसे भी मिले हैं जो रहीम के कहे जाते हैं परन्तु वे अन्य कवियों के लिखे हुए हैं। इस प्रकार के दोहे

टिप्पणी में सूचित कर दिये गये हैं। कुछ ऐसे भी हैं जिनमें रहीम का नाम नहीं आता और थोड़े ऐसे भी हैं जो रहीम और किसी अन्य कवि दोनों के नाम से मिलते हैं। हमने सतसई की खोज का बड़ा प्रयत्न किया परन्तु यह निष्फल हुआ है। जो नये दोहे मिले हैं उन्हीं से सन्तोष करना पड़ता है।

संदिग्ध दोहों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। रहीम तथा कबीर के सम्बन्ध में प्रायः इस प्रकार की गड़बड़ी विशेष रूप से मिलती है। 'दोहासार-संग्रह' तथा 'गुणगंजनामा' नामक दोहों के दो प्राचीन संग्रह हमारे पुस्तकालय में हैं। दोहासार-संग्रह तो सं० १७२० के लगभग रचा गया था और गुणगंजनामा के विषय में कुछ ज्ञात नहीं। इन संग्रह ग्रंथों में भी कुछ दोहे दिये गये हैं जिनमें या तो रहीम का नाम नहीं है अथवा अन्य किसी कवि का नाम दे दिया है। हमने इस प्रकार की गड़बड़ी की सूचना प्रायः टिप्पणी में दे दी है। 'रहीम-रत्नावली' में दिये हुए हम प्रत्येक दोहे को रहीम रचित प्रमाणित नहीं कर सकते। परन्तु जब ये दोहे रहीम के नाम से प्रसिद्ध ही हैं तो जबतक उनके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिलता तबतक रहीम रचित ही मानने चाहियें। प्रायः रहीम रचित दोहों में 'रहीम' अथवा 'रहिमन' उपनाम दिया गया है परन्तु निम्नाङ्कित १४ दोहों में कोई उपनाम नहीं है। १, २१, २२, ४६, ६७, ६९, ८३, ९४, १००, ११४, १३२, १४३, १४८, २४३। इन 'रहीम' उपनाम-रहित दोहों के सम्बन्ध में संदिग्धता हो सकती है। एक दो 'रहिमन शतक' नामक ग्रंथों में रहीम नाम से निम्न लिखित दो दोहे और मिलते हैं।

कहु रहीम उत जायके, गिरिधारी सों टेरि।
अब दृग जल भर राधिका, ब्रजहि डुबावत फेरि।

प्रिय वियोग ते दुसह दुख, सूने दुख ते अंत।
होत अंत ते फिरि मिलन, तोरि सिधाये कंत ॥

पहिला दोहा रहीम-कवितावली में भी दिया है। परन्तु यह दोहा विहारी के नाम से प्राचीन प्रतियों में मिलता है। दूसरे के सम्बन्ध में शंका है, कारण किसी विश्वस्त हस्त-लिखित अथवा छपी प्रति में यह दोहा नहीं है।

देत देत सब दीन, एक न दीनो दुसह दुख।
सोऊ मरिके दीन, कछु न राख्यो देनको ॥

कहा जाता है कि उपर्युक्त सोरठा अकबर ने बीरबल की मृत्यु पर कहा था। परन्तु ज्ञानभास्कर प्रेस (बाराबंकी) से प्रकाशित रहिमन शतक में इसे रहीम रचित कहा गया है।

नंबर १८ तथा ९२ वाले दोहों का उत्तरार्थ एक ही है परन्तु पूर्वार्ध में कुछ भेद होने के कारण अर्थान्तर हो गया है, इस कारण दो पृथक दोहे माने गये हैं। इसी प्रकार नं० ६८ और १०६ में विशेप अर्थान्तर तो नहीं है, परन्तु पूर्वार्ध तथा उत्तरार्थ की गड़बड़ी से दो रूप हो गये हैं। दोनों ही पाठ ठीक हो सकते हैं, इस कारण दोनों ही दोहे दिये गये हैं। रहीम-रचित दोहों का कोई क्रम नहीं है। उनका क्रम विषयानुसार किया जा सकता था, परन्तु हमें अकारादि क्रम अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ, इस कारण इसी क्रम से दोहे दिये गये हैं। पाठकों को भी यह क्रम सुगमतर प्रतीत होगा।

प्राप्त दोहों में शृङ्गार के दोहे बहुत कम हैं। 'संभव है कि रहीम-रचित सतसई में से किसी ने शृङ्गार के दोहे निकाल कर नीति आदि के दोहों का एक छोटा सा संग्रह किया हो, और अब वही संग्रह प्राप्त है और शृङ्गार का भाग लुप्त हो गया हो। रहीम ने सतसई न लिखी हो इस प्रकार का अनुमान करना

वृथा प्रतीत होता है। यद्यपि हमें सतसई की खोज में सफलता नहीं प्राप्त हुई, तथापि हमारा यह विश्वास नहीं कि रहीम ने सतसई लिखी ही नहीं। रहीम ने अपने ७२ वर्ष के दीर्घ जीवन-काल में यदि सतसई के सात सौ दोहे लिखे हों तो आश्चर्य ही क्या है?

इस समय जो दोहे रहीम के प्राप्त हैं वे या तो केवल नीति-विषयक दोहों का संग्रह ही है अथवा जिन दोहों में रहीम उप-नाम है वही अब रहीम के गिने जाते हैं। और बाकी ४०० दोहे अज्ञात कवियों के माने जाने लगे हैं।

रहीम का विशेष समय ऐसे झंझटों में बीता था कि वे या तो छोटे ग्रन्थ या दोहे, सोरठे ही सुगमता से लिख सकते थे। मन में कोई तरंग उठी, भाव आया, तुरन्त दोहे वा सोरठे में व्यक्त कर दिया।

नीति और शिक्षा के दोहे प्रायः रचयिता के अनुभव के साक्षी हैं। कहीं कहीं भाव-भाषा गठे हुए नही हैं, परन्तु वे कवि के सच्चे भाव हैं इसमें सन्देह नहीं होता। रहीम के बाद दोहा हिन्दी काव्य-साहित्य का अमूल्य रत्न बन गया था और उसमें कोमल भावों की बारीकियाँ व्यक्त करने की शक्ति भी अधिक आ गई थी। इस छन्द को लोकप्रिय बनाने में रहीम को बड़ा श्रेय प्राप्त है। कहावत के रूप में बहुत दोहे अब भी लोगों की जिह्वा पर आते हैं। दो चार बड़े कवियों को छोड़कर किसी के वाक्य बोलचाल में इतने प्रचलित नहीं हैं, जितने रहीम के हैं। नीति के दोहे बहुत से कवियों ने कहे हैं परन्तु अपने आन्तरिक भावों तथा अनुभवों को जी खोलकर रहीम की तरह थोड़े ही कवि कह सके हैं। उपदेश की बातें कहने में कोई नवीनता वा मौलिकता नहीं हुआ करती, अपना अनुभव ही उनको सजीव

बनाता है; और यही रहीम की विशेपता है। पिंगल की कसौटी से तो शायद दो चार दोहे ही ठीक उतरें, परन्तु "दोग्धि चित्त-भिति दोहा" अर्थात् जो चित्त को दुहता है वह दोहा है–इस लक्षण को अपनाया जाय तो प्रत्येक दोहा वास्तव में दोहा है। उत्तम छन्दों को चुनकर यहाँ उद्धृत करना अनावश्यक प्रतीत होता है और मिश्रबन्धु महोदयों की सम्मति के अनुसार तो उत्तम छन्दों के उदाहरण में इनका पूरा ग्रन्थ ही रक्खा जा सकता है।

२ **नगर शोभा**–कुछ काल हुआ जब यह हस्तलिखित पुस्तक खोज में हमको मिली थी। इसकी सूचना 'माधुरी' (फाल्गुन-पूर्ण संख्या ५२) में हमने प्रकाशित की थी। पुस्तक में लिखने का समय नहीं दिया है, किन्तु इसके प्राचीन होने में कोई सन्देह नहीं है। इसके प्रत्येक दोहे में रहीम का नाम न होने पर भी कविता की भापा, उसकी प्रौढ़ता और भाव देखने से यह ग्रन्थ रहीम का ही जान पड़ता है। 'शृंगार-सोरठा' की भापा से इसकी भाषा मिलती भी है। सब से विश्वस्त प्रमाण यह है कि पुस्तक के आदि में लिखा है—

"अथ नगरशोभा नवाब खानखाना-कृत"।

इसमें १४२ दोहे हैं। आरम्भ में मंगलाचरण दिया गया है। इससे प्रतीत होता है कि यह एक स्वतंत्र ग्रन्थ है। रहीम-सतसई का अंश नहीं है। महाकवि देवजीने 'जाति-विलास' में जिस रीति से बहुत सी जातियों की तथा देशों की स्त्रियों का वर्णन किया है, उसी रीति से 'नगरशोभा' में भी अनेक जातियों की स्त्रियों का वर्णन बड़ी सुन्दरता से किया गया है। भाव शृंगार का है। दोहे की शब्द-योजना से वर्णित स्त्री की जाति तथा कर्म या मनोहर चित्र नेत्रों के सम्मुख आ जाता

है। यह ग्रन्थ रहीम के सैलानी स्वभाव का परिचायक है। यह अनुमान किया जा सकता है कि देवजी ने 'जाति-विलास' कदाचित् रहीम के इस ग्रन्थ को देख कर बनाया हो और रहीम को इस ग्रन्थ की रचना अकबर के मीनाबाज़ार से सूझी हो।

इसी प्रकार के एक ग्रन्थ का अंश और भी मिलता है और वह बरवा छन्द में है। बरवा रहीम को विशेष प्रिय था। संभव है कि दोहा छन्द में लिखने के पश्चात् बरवा छन्द में भी 'नगरशोभा वर्णन' लिखने के विचार से ये बरवे लिखे हों। इन बरवों की रहीम की कविता से तुलना भी करने योग्य है। 'नगरशोभा वर्णन' में जिस भाव से ब्राह्मणी और तुरकनी का वर्णन किया गया है वैसे ही भाव इन बरवे में ब्राह्मणी और तुरकनी के वर्णन में पाए जाते हैं। जैसे 'नगरशोभा वर्णन' में प्रत्येक जाति की स्त्री का वर्णन करने में उस जाति से संबंध रखनेवाला कोई न कोई शब्द लाने का प्रयत्न किया गया है, वैसा ही प्रयत्न इन बरवे के रचयिता ने किया मालूम होता है। यह बात तो निश्चित रीति से कही जा सकती है कि इनका रचयिता मुसलमान था। अधिक संभव यह ही है कि ये बरवे भी रहीम-कृत ही हों, परन्तु निश्चित रीति से नही कहा जा सकता। इसी लिये उनको यहाँ उद्धृत करते हैं कि खोज करनेवालों को पता लगे तो ग्रन्थकर्त्ता का पता चल सके।

ऊँच जाति ब्राह्मणियाँ, बरणि न जाय।
दौरि दौरि पालागी, शीश छुआय ॥ १ ॥
बड़ि बड़ि आँखि बरनियाँ, हिय हरिलेत।
पतरी के अस डोब, करजवा देत ॥ २ ॥

घाट बाँट लै बानिनि, हाट बईठ ।
कहत काहु नहिं जानी, बतियन मीठ ॥ ३ ॥
नीक जाति कुरमी की, खुरपी हाथ ।
आपन खेत निवारै, पी के साथ ॥ ४ ॥
अहिरिनि मन की गहिरी, उतर न देय ।
नैना करै मथनियाँ, मनमथ लेय ॥ ५ ॥
हलुवा जस हलवनियाँ, गलवा लाल ।
लाल लाल है जुबना, नैन रसाल ॥ ६ ॥
टेढ़ माँग नाइन की, नहरन हाथ ।
फिर पाछे जो हेरै, महतौ साथ ॥ ७ ॥
चीकन गात तेलनियाँ, बरनि न जाय ।
चितवत रूप अनूपम, चित लपटाय ॥ ८ ॥
मैली एक धोबनियाँ, ऊजर गाँव ।
भूलि कन्त बिन कलपति, लै लै नाँव ॥ ९ ॥
झमक चली कसइनयाँ, दै दै सैन ।
धरै करेजवा छुरिया, करि करि पैन ॥ १० ॥
नीक जाति तुरकिन की, बहुतै लाज ।
जाने पिय की सेवा, और न काज ॥ ११ ॥
सुन्दरि तरुणि तमोलिनि, तरवन कान ।
हेरै हँसे हरै मन, फेरै पान ॥ १२ ॥
भरभूजिन कन भूजहि, बेठि दुकान ।
फुटका करति बिहँसि के, बिरही प्रान ॥ १३ ॥
कलवारी मदमाती, काम कलोल ।
भरि भरि देय पियलवा, महा ठठोल ॥ १४ ॥
परदवार तन नाजुक, कैथिन नारि ।
शक धरे घूँघट दग, चली निहारि ॥ १५ ॥

अचरज करत लुहरिया, पिय के पास ।
जाहि छुवत बिन जिय के, लेय उसास ॥ १६ ॥

३ बरवे नायिकाभेद—रहीम का यह ग्रन्थ सम्पूर्ण प्राप्त है और है भी अति प्रसिद्ध। जैसा कि अन्यत्र लिखा है, रहीम के मुंशी की स्त्री ने एक बरवे उनके पास भेजा था और संभवतः तभी से यह छन्द रहीम को विशेष प्रिय हो गया, और नायिकाभेद लिखने को इसी छन्द को पसन्द किया। रहीम को बरवे के लिये जो आग्रह था वह निम्नलिखित दोहे से प्रकट है।

कवित कह्यो दोहा कह्यो, तुलै न छप्पय छन्द ।
विरच्यो यहै विचार कै, यह बरवै रसकन्द ॥

रहीम ने इस छन्द के लिखने में विशेष कौशल भी दिखलाया है। तुलसीदासजी ने 'बरवे रामायण' रहीम के बरवे देख कर लिखी है। यह भी कहा जाता है कि रहीम ने गोस्वामी जी से कह कर 'बरवे रामायण' की रचना कराई है। बाबा वेणी-माधव-रचित गुसाईंचरित में इस बात का प्रमाण भी मिलता है। यथा—

कवि रहीम बरवै रचे, पठये मुनिवर पास ।
लखि तेइ सुन्दर छन्द में, रचना कियेउ प्रकास ॥

जैसे सूर के पद, विहारी के दोहे, तुलसी की चौपाई, साहित्य में अपना अपना विशेष स्थान रखते हैं, उसी प्रकार रहीम के बरवे भी हिन्दी-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। यह शुद्ध अवधी भाषा में लिखे गये हैं। अवधी में ही बरवे लिखा जा सकता है, ब्रजभाषा में इसकी रचना नहीं होती। यह दोहे से भी छोटा छन्द, परन्तु बड़ा मधुर और चमत्कारी है। नायक और नायिका के सरल उदाहरण दिये गए हैं। उदाहरण

बड़े ही मनोहर हैं और रहीम की कवित्व-शक्ति के सब से उत्तम प्रमाण हैं। एक भी बरवे शिथिल नही है। साहित्य में यह छोटा सा ग्रन्थ विशेष आदर पाने योग्य है। महाकवि केशवदास ने 'रसिकप्रिया' संवत् १६४८ वि० में रची थी। कहा नहीं जा सकता कि रहीम का 'बरवे नायिकाभेद' उससे पहिले रचा गया था या पीछे। परन्तु हिन्दी के नायिकाभेद विषयक ग्रन्थों में यह ग्रन्थ भी आदिग्रन्थों में से कहा जा सकता है।

हमको खोज में एक ग्रन्थ मिला जिसमें रहीम के बरवे के साथ मतिराम के दोहे भी दिये गये है। पं० कृष्णविहारी मिश्रजी के पास भी एक इसी प्रकार की प्रति है। इन प्रतियों में नायक-नायिका के लक्षण तो मतिराम के दोहों में दिए गए हैं और उदाहरण रहीम के बरवे हैं।

महाराज काशिराज के पुस्तकालय में भी एक पुस्तक है, जिसमें मतिराम के दोहे और रहीम के बरवे साथ मिलाकर लिखे हुए हैं। इस प्रति के अन्त में निम्नलिखित दोहा है—

लक्षण दोहा जानिये, उदाहरण बरवान।
दूनों के संग्रह भए, रस सिंगार निर्मान॥

सम्भव है कि मतिराम ने स्वयं संग्रह किया हो। थोड़े समय के लिए मतिराम और रहीम समकालीन भी थे और मतिराम के काव्य पर रहीम का पूर्ण प्रभाव भी पड़ा है। इन दोनों कवियों में भाव–सादृश्य के अनेक उदाहरण मिले भी हैं। इसमें कोई सन्देह नही कि मतिराम की कविता रहीम की ऋणी है। इस संग्रह में दोहे मतिराम-कृत 'रसराज' के हैं। लक्षण और उदाहरण दोनों के संग्रह से ग्रन्थ भी सम्पूर्ण हो गया और रहीम की कृति भी चमक उठी है। इसीलिए मूल में मतिराम के दोहे भी छोटे अक्षरों में दे दिये हैं। 'रहीम-रत्नावली' में दिया हुआ

मुग्धा के उदाहरण का ५ वें नंबर का वरवा उक्त प्रतियों में नहीं है, किन्तु शिवसिंहसरोज तथा अन्य सभी मुद्रित पुस्तकों में इसे रहीम-रचित माना है।

४ वरवे—यह भी एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक हमको खोज में मिली है। यह प्रति बहुत ही सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई है और प्रत्येक पृष्ठ के हाँशिये पर फारसी चित्रकला के अनुसार वेल-बूटे बने हुए हैं। रहीम का मातामह जमालख़ाँ मेवाती था और यह प्रति भी मेवात में ही मिली है।

आदि में मंगलाचरण के ६ छंद हैं जिससे यह एक स्वतंत्र ग्रंथ प्रमाणित होता है। किसी अन्य ग्रंथ का भाग नहीं है। नायिकाभेद में ११४ वरवे हैं, और इसमें १०१ हैं। परन्तु इन वरवों में कोई क्रम नही है। विषय विशेष कर शृङ्गार रस का है। बीच-बीच में भक्ति ज्ञान वैराग्य पर भी छंद आ जाते हैं। अन्त में ग्रंथ-समाप्ति-विषयक कोई छंद नहीं दिया है और न संवत ही लिखा है। चार बरवे फारसी भाषा के हैं।

इस ग्रंथ की भाषा नायिकाभेद से अधिक प्रौढ़ है। इससे अनुमान होता है कि यह ग्रन्थ नायिकाभेद के पश्चात् की कृति है। भाषा और काव्य-चमत्कार में भी यह ग्रंथ अन्य रहीम की रचनाओं से न्यून नहीं है। आरम्भ के मंगलाचरण सम्बन्धी छंदों में तथा गो० तुलसीदासजी की रामायण के मंगलाचरण के सोरठों में बहुत कुछ भावसाम्य है। दोनों में मित्रता भी खूब थी। गोस्वामीजी ने 'वरवे रामायण' रहीम के भेजे हुए वरवों को देखकर रची है *। अनुमानतः रहीम ने रामचरित-मानस

---

* कवि रहीम वरवै रचे, पठये मुनिवर पास।
लखि तेई सुन्दर छन्द में, रचना कियेउ प्रकास॥
—बाबू वेणीदास-कृत मूल गुँसाईचरित्र।

के सोरठों से ही भाव ले कर ये बरवे रच कर गोस्वामीजी की सेवा में भेजे होंगे, जिससे रहीम की गोस्वामीजी पर प्रगाढ़ भक्ति प्रकट हो जाय और तुलसीदासजी का ध्यान इस ओर आकर्षित हो कि इस सुन्दर छंद में भी रामकथा वर्णित की जाय तो लोकोपकार हो।

इस ग्रन्थ के अन्त के पिछले चार बरवे अन्य फुटकर संग्रहों से एकत्रित किये गये हैं। ये बरवे भी रहीम-रचित सुने जाते हैं।

१–पथिक आय पनघटवा, कहत पियाव।
पैया परौ ननदिया, फेरि कहाव॥

—पं० रामनरेश त्रिपाठी कृत कविताकौमुदी

२–या झर में घर घर में, मदन हिलोर।
पिय नहिं अपने कर मे, कर में खोर॥

—नवीन कृत प्रबोधरससुधासागर

३–बालम अस मन मिलयउँ, जस पय पानि।
हसनि भयल सवतिया, लइ बिलगानि॥

—रहिमनविलास तथा अन्य ग्रंथ*

४–ढीलि आँख जल अँचवत, तरुनि सुभाय।
धरि खसकाई घइलना, मुरि मुसुकाय॥

—नकछेदी तिवारी द्वारा संपादित नायिकाभेद†

---

* प० नकछेदी तिवारी द्वारा संपादित नायिकाभेद में यह नहीं दिया है और शिवसिंहजी ने इसे यशोदानंदन कृत लिखा है। नायिकाभेद की हमारी हस्तलिखित पुस्तक मे भी यह छंद नहीं है।

† हमारी हस्तलिखित पुस्तक मे यह छंद नहीं है और न यह छंद काशीनरेश की प्रति तथा असनी से प्राप्त मिश्रजी की प्रति में है। किन्तु मिश्रबधु-विनोद तथा अन्य अनेक मुद्रित पुस्तकों में यह मध्या के उदाहरण में दिया है।

इन चार छंदों के अतिरिक्त एक बहुत ही उत्कृष्ट बरवा भी रहीम-कृत प्रसिद्ध है। पं० नकछेदी तिवारी ने अपने संपादित मनोजमंजरी में इसे रहीम-रचित बताया है और उन्होंने इसे स्वसंपादित रहीम कृत नायिकाभेद तथा सेवकराम-कृत नख-शिख के मुख पृष्ठ पर दिया है। वह इस प्रकार है—

नयना मति रे रसना, निज गुन लीन।
कर तू पिय झिझकारे, भली न कीन॥

यह बरवे भी रहीम-रचित ही है। इसका एक प्रमाण यह भी है कि संत कवि ने, जो रहीम का ही आश्रित था, इस बरवे के भाव को एक सवैया में व्यक्त किया है। वास्तव में तो यह सवैया इस बरवे की टीका है:—

पीसो झुकी रसना विन काज लखै गुन नाम सयान तिहारे।
नयना चले अति रूखे रहे तुम ताही ते नाम ए जानत धारे॥
'संत' विरुद्ध चल्यो अति ही जिहिते दुख नैकु टरै नहि टारे।
पाय सुलच्छन नाम अरे कर काहे को नंदलला फटकारे॥

५ मदनाष्टक—रहीम ने इस अष्टक की रचना संस्कृत कवियों की चाल पर मालिनी छंद में की है। भाषा रेखता तथा संस्कृत मिश्रित है। ऐसी मिश्रित कविता रहीम के बहुत पहिले से होती चली आई थी। संवत् १४०० के लगभग शारङ्ग-धर ने अपनी 'शारङ्गधर पद्धति' में श्रीकण्ठ का निम्नलिखित छंद दिया है—

नूनं बादल छाइ खेह पसरी निःश्राणशब्दः खरः।
शत्रु पाडि लुटालि तोडि हनिसौ एवं भणन्त्युद्भटा॥
झूठे गर्व भरामघालि सहसा रे कन्त मेरे कहे।
कण्ठे पाग निवेश जाह शरणं श्रीमल्लदेवमं प्रभुम्॥

संवत् १३८२ से पूर्व अमीर खुसरो ने फारसी हिन्दी मिश्रित कविता लिखी थी। और वह प्रसिद्ध भी है। केदारभट्ट-रचित 'वृत्त रत्नाकर' संस्कृत का एक ग्रंथ है। उसकी संस्कृत टीका नारायणभट्ट ने संवत् १६०२ में लिखी थी। उसमें निम्नलिखित छंद मिश्रित काव्य के उदाहरण में दिया है—

हरनयन समुत्थः ज्वाल वन्हि जलाया।
रति नयन जलौघैः खाक वाकी बहाया॥
तदपि दहति चेतो मामकं क्या करौगी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

ऐसे मिश्रित काव्य करने की प्रथा रहीम से कई वर्ष पहिले प्रचलित थी। और रहीम ने भी इसी प्रकार की रचना की है। रहीम के आश्रित रहनेवाले गंग कवि के भी मिश्रित भाषा के कुछ छन्द हमारे पास हैं। रहीम के इस प्रकार के ८ छंद तो 'मदनाष्टक' में हैं और २ छंद 'रहीम-काव्य' में हैं। इसके अतिरिक्त 'खेटकौतुक' नामक रहीम का ज्योतिष ग्रंथ भी मिश्रित भाषा में रचा गया है। 'मदनाष्टक' में इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है और यह खड़ी बोली के प्राचीन रूप का उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस समय हिन्दी-संसार के सम्मुख तीन मदनाष्टक हैं जिनमें प्रत्येक रहीम रचित कहा जाता है। ये तीन मदनाष्टक ये हैं—

१. सम्मेलन-पत्रिका (भाद्रपद, संवत् १९७९) में प्रकाशित।
२. असनी से प्राप्त।
३. काशी-नागरीप्रचारिणी-पत्रिका में प्रकाशित।

इन तीनों मदनाष्टक में रहीम कृत कौनसा है, इसमें मतभेद है। नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित रहीम कवितावली में तो नागरीप्रचारिणी-पत्रिकावाला मदनाष्टक रहीम-रचित माना है।

वास्तव में निश्चित रूप से कोई बात कहना कठिन है। हमने तो सम्मेलन-पत्रिका में प्रकाशित मदनाष्टक को ही रहीम-रचित मान कर रहीम-रत्नावली में स्थान दिया है। इसके निम्नलिखित कारण हैं:—

१—शिवसिंह सरोज जैसी प्राचीन संग्रह-पुस्तक में तथा मिश्रबंधु-विनोद में मदनाष्टक का जो छंद उदाहरण में दिया गया है वह नागरीप्रचारिणी-पत्रिका वाले में नहीं है।

२—असनी तथा नागरीप्रचारिणी-पत्रिकावाले अष्टकों के प्रथम छंद विचारणीय हैं। ये दोनों छंद नायक की उक्तियाँ हैं, परन्तु बाकी के सात छंदों में नायिका की उक्तियाँ हैं। परन्तु सम्मेलन-पत्रिका के अष्टक के आठों छंद नायिका की ही उक्तियाँ हैं। इससे भाव का क्रम गठा हुआ प्रतीत होता है।

३—नागरीप्रचारिणी-पत्रिकावाले अष्टक का तीसरा छंद तथा असनीवाले का सातवाँ छंद (हरनयन हुताशम् ज्वलया जो जलाया) कुछ साधारण पाठान्तर के साथ केदारभट्ट विरचित वृत्तारत्नाकर की नारायणभट्ट की टीका में दिया है। यह टीका रहीम के जन्म से भी ११ वर्ष पूर्व रची गई थी। इस कारण यह छंद रहीम का नहीं हो सकता।

वास्तव में निश्चित रीति से तो कुछ नहीं कहा जा सकता। संभव है कि नारायणभट्ट की टीका में कथित छंद को देख कर रहीम ने 'मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी' को समस्या मान कर पूर्ति की हो और यह भी संभव है कि ये सभी छंद रहीम-रचित ही हों और जिसे जो छंद मिले उन्हें एकत्र कर अष्टक का रूप दे दिया।

हमने अन्य अष्टकों की अपेक्षा सम्मेलन-पत्रिकावाले अष्टक को ऊपर लिखित कारणों से रहिम-रचित मान कर मूल पुस्तक में

स्थान दिया है, किन्तु साहित्यिक खोज करनेवालों के सुभीते के लिये असनी से प्राप्त तथा नागरीप्रचारिणी-पत्रिकावाले मदनाष्टक भी यहाँ उद्धृत करते हैं:—

असनी से प्राप्त —

(१)

दृष्ट्वा तत्र विचित्रता तरुलतां, मैं था गया बाग़ में।
काचित् तत्र कुरंगशावनयनी, गुल तोड़ती थी खड़ी॥
उन्मद्भ्रूधनुषा कटाक्षविशिखैः घायल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुजारो शुकर॥

(२)

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला चाँदनी मे खड़ा था॥
कटि तट बिच मेला, पीत सेला नवेला।
अलि बनि अलबेला यार मेरा अकेला॥

(३)

अकल कुटिल कारी देख दिलदार जुल्फै।
अलि-कलित निहारै आपने दिल की कुल्फै॥
सकल शशि-कला को रोशनीहीन लेखौ।
अहह ब्रजलला को किस तरह फेर देखौ॥

(४)

वहति मरुति मन्दम् मै उठी रात जागी।
शशि-कर कर लागे सेज को छोड़ भागी॥
अहह विगत स्वामी मैं करूं क्या अकेली।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

(५)

छबि छकित छबीली छैलरा की छड़ी थी।
मणि जटित रसीली माधुरी मुदरी थी॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब लेखा।
कहि सकत न जैसा कान्ह का हस्त देखा॥

(६)

विगत घन निशीथे चांद की रोशनाई।
सघन घन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई॥
सुत पति गतनिद्रा स्वामियाँ छोड़ भागीं।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

(७)

हर-नयन हुताशन ज्वालया भस्मिभूत।
रतिनयन जलौघे खाख बाकी बहाया॥
तदपि दहति चित्त मामकम् क्या करौगी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

(८)

हिम रितु रतिधामा सेज लोटौ अकेली।
उठत विरह-ज्वाला क्यौं सहौरी सहेली॥
इति वदति पठानी मदमदांगी विरागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

काशी-नागरीप्रचारिणी-पत्रिका में प्रकाशित और 'रहीम कवितावली' में दिया हुआ अष्टक इस प्रकार है—

(१)

मनसि मम नितान्तम आयकै बासु कीया।
तन धन सब मेरा मान तैं छीन लीया॥

अति चतुर मृगाक्षी देखतैं मौन भागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

(२)

वहत मरुति मन्दम् मै उठी राति जागी।
शशि-कर कर लागे सेल ते पैन बागी †।
अहह विगत स्वामी क्या करौ मै अभागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

(३)

हर-नयन हुताशम् ज्वालया जो जलाया।
रति-नयन जलौघै खाख बाकी बहाया॥
तदपि दहति चित्तम् मामकम् क्या करौगी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

(४)

विगत घन निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन बन निकुंजे कान्ह बसी बजाई॥
सुत पति गतनिद्रा स्वामियाँ छोड़ भागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

(५)

हिम ऋतु रतिधामा सेज लोटौं अकेली।
उठत विरह-ज्वाला क्यों सहौ री सहेली॥
चकित नयन बाला तत्र निद्रा न लागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

(६)

कमल मुकुलमध्ये राति को ए सयानी।
लखि मधुकर बधम् तू भई री दिवानी॥

---

† शशि-कर कर लागे सेज को छोड़ भागी।

तदुपरि मधुकाले कोकिला देखि भागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(७)

तव बदन मयकी ब्रह्म की चोप बाढ़ी।
मुख छबि लखि भू पै चाँदते काति गाढ़ी ॥
मदन-मथित रंभा देखतै मोहि भागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

(८)

नभसि घन घनान्ते है घनी कैसि छाया।
पथिक जन बधूनाम् जन्म केता गँवाया ॥
इति वदति पठानी मन्मथांगी विरागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥

असनी के अष्टक के २, ३, ५, ६ नंबर के छंद तथा ना० प्र० पत्रिका का चौथा छंद सम्मेलन-पत्रिका के मदनाष्टक से मिलते हैं। भाव का यदि कोई क्रम नहीं है तो इससे कोई हानि नहीं होती। क्योंकि यह कोई प्रबंध काव्य नहीं है। एक एक छंद यदि पूरा भाव प्रदर्शित करता है, तो कवि को सन्तोष हो गया होगा। यह अष्टक भी मन की तरंग में ही लिखा गया है। संभव है कि आरम्भकाल की कविता हो।

६ **फुटकर पद**—ऐसा कहा जाता है कि रासपञ्चाध्यायी नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ रहीम ने रचा था। परन्तु वह प्राप्त नहीं है। दो पद भक्तमाल में दिये हुए हैं। उनके साथ एक प्रसंग भी है, जो किंवदन्तियों में दिया गया है। खोज में जो पाठ-भेद मिला है वह भी एक पुस्तक में सूचित करते हैं। खोज में हमें जो और छंद मिले हैं वे भी यहाँ सम्मिलित कर दिये हैं। अजमेर से प्रकाशित ठाकुर भूरिसिहजी शेखावत रचित 'विविध

संग्रह' में रहीम का एक छप्पय दिया है, उसमें रहीम के एक श्लोक का ही भाव है, उसे 'रहीमकाव्य' के उस श्लोक के साथ ही दिया है।

७ शृंगार सोरठा—यह भी अधूरा ग्रंथ है। इसके एक स्वतंत्र ग्रंथ होने का केवल यही प्रमाण है कि नाम प्रचलित है। संभव है कि सतसई का यह एक भाग हो। कुछ निश्चय नहीं कहा जा सकता। जो सोरठे प्राप्त हैं, बड़े ही भावपूर्ण हैं। दोहों में जो कहीं-कहीं शिकायत है, वह इनमें नहीं है। परन्तु है कितने थोड़े!

८ रहीम-काव्य—यह संस्कृत और हिन्दी मिश्रित श्लोकों का संग्रह है। पूरी पुस्तक नहीं देखने में आई है। इन श्लोकों का कोई क्रम नहीं है। हिन्दू और मुसलमान जातियों के तत्कालीन मेल का साहित्यिक रूप इस ग्रंथ में मौजूद हैं। उक्तियाँ अच्छी हैं और संस्कृत शुद्ध है। रहीम का अधिकार संस्कृत पर कैसा था वह इन श्लोकों से स्पष्ट है। प्रथम श्लोक का भाव रहीम ने हिन्दी में एक छप्पय में भी व्यक्त किया है। उसे हमने फुटकर पद में न देकर इस श्लोक के साथ पाद-टिप्पणी में दिया है।

९. खेट कौतुकम्—यह ग्रन्थ भी फारसी और संस्कृत दो भाषाओं की खिचड़ी है। ग्रन्थ सम्पूर्ण प्राप्त है और वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित भी हो चुका है। ज्योतिष का ग्रन्थ है, साहित्य का नहीं। इसीलिये मूल पुस्तक में इसको स्थान न देकर नीचे दो एक उदाहरण देकर सन्तोष किया है। ग्रहों के फल इसमें दिये हैं और अन्त में राजयोग पर एक अध्याय दिया है। मंगलाचरण के श्लोक के पश्चात् रहीम कहते हैं—

फ़ारसी पद मिश्रित ग्रन्थाः खलु पण्डितैः कृता पूर्वैः ।
संप्राप्यतत्पदपर्थं करवाणि खेटकौतुकं पद्यम् ॥

इसी तरह के श्लोक हैं। अन्त में एक श्लोक राजयोग पर इस प्रकार दिया है—

यदा मुश्तरी केन्द्रखाने त्रिकोणे यदा वक्तखाने रिपौ आफ़ताबः ।
अतारिद विलग्ने नरो बख्तपूर्णस्तदा दीनदारोऽथवा बादशाहः ॥
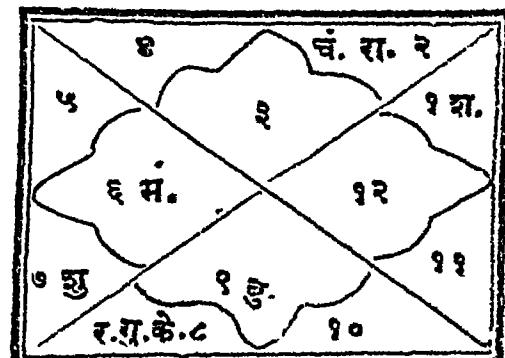
अर्थात् जिसके जन्म-समय में वृहस्पति केन्द्र में अथवा त्रिकोट में और सूर्य छठे घर में और बुध लग्न में हों तो वह मनुष्य अपने समय का बड़ा आदमी वा राजा हो।

ख़ानख़ाना तो हरफ़न मौला थे, ज्योतिष में भी दख़ल रखते थे और उस पर एक पुस्तक भी लिख दी।

कहते हैं कि शतरंज के खेल पर उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी। परन्तु वह अभी तक किसी को मिली नहीं है।

ज्योतिष जाननेवालों के लिये ख़ानख़ाना की जन्म-कुण्डली भी यहाँ दी जाती है। मुंशी देवीप्रसादजी ने बड़े उत्साह और परिश्रम से इसे खोज निकाली है।

संवत् १६१३ शा० १५७८ मार्गशीर्ष शुक्ल १४ चन्द्र घ० १५ पल ३७ परते पूर्णिमा कृत्तिका नक्षत्रे घ० २६।४६ शिवयोगे घ० २४।२० इह दिवसे सूर्योदयात् गत घटी २८।१६ रात्रिगत घ० २।५५ मिथुन लग्ने लाभ पुरे श्रीमत् ख़ानख़ाना महाशयानामजनिरभूत ।

सदृश भाव

रहीम की कविता में उनके पूर्ववर्ती तथा समकालीन कवियों के भाव पाये जाते हैं। इसी रीति से रहीम के परवर्ती कवियों की कविताओं में रहीम के अनेक भाव मिलते हैं। ऐसे सदृश भाव के अनेक उदाहरण टिप्पणी में दिये भी गये हैं। कई कवियों की समान भाव की कविता मिलने के अनेक कारण होते हैं। परवर्ती कवि जानबूझ कर वा सहज भाव से पूर्ववर्ती कवि के भाव लेकर कविता करता है और अपनी ओर से उसमें कुछ चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है। कभी केवल चोरी करके ही भाव को अपना लेता है और कभी केवल अनुवाद मात्र ही करता है। चोरी करने की अवस्था में ही भावापहरण निन्दनीय है। अन्य अवस्थाओं में सदृश भाव होना दोष नहीं माना जा सकता।

रहीम दूसरों के भाव लेकर भी अपनी कविता में ऐसा चमत्कार और रोचकता उत्पन्न कर सके हैं कि उनकी कविता की सभी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। इन्होंने जिन कवियों के भाव लिये हैं उनके शब्दाडम्बर को छोड़ कर मुख्य भाव को इस उत्तमता से प्रकट किया है कि अनुवाद होते हुए भी इनकी कविता मौलिक मालूम होती है। जनसाधारण तक को इनकी कविता इतनी प्रिय हुई है कि हमने ग्रामीणों तक के मुख से इनके दोहे सुने हैं। इन समस्त कारणों से रहीम पर भावापहरण का लांछन नहीं लगाया जा सकता है।

आज-कल तुलनात्मक समालोचना के नाम से समान भाव के छन्दों से एक कवि की तुलना दूसरे कवि से की जाती है। किसी कवि को दो-एक छन्द के ही आधार पर आकाश पर चढ़ा

दिया जाता है और दूसरे को बलात् पाताल में ढकेल दिया जाता है। इस प्रकार कवियों का स्थान नियत करने की रीति से हम पूर्णतया सहमत नहीं हैं। इस रीति की समालोचना से कवियों के साथ अन्याय होना संभव है। तुलनात्मक समालोचना अवश्य होनी चाहिये, किन्तु एक ही दो छन्दों के आधार पर एक को दूसरे से घटाने का प्रयत्न करना दोषपूर्ण है। यहाँ रहीम की अन्य कवियों के साथ तुलनात्मक समालोचना केवल इसी उद्देश्य से की जाती है कि साहित्य-सेवियों को पता लग जाय कि पूर्ववर्ती कवियों का रहीम की कविता पर, और रहीम की कविता का परवर्ती कवियों पर किस प्रकार और कितना प्रभाव पड़ा। हिन्दी साहित्य में रहीम का वास्तविक स्थान तो ३०० वर्ष से निश्चित है। कारण कि दो-चार कवियों को छोड़ कर रहीम की ही कविता का, लोकप्रिय होने के कारण, जनसमुदाय में सबसे अधिक प्रचार है।

रहीम और संस्कृत कवि

हिन्दी के बड़े-बड़े कवियों ने अनेकानेक संस्कृत कवियों के भावों को अपनी कविता में स्थान दिया है। सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, सेनापति आदि हिन्दी के महाकवि भी सैकड़ों भावों के लिये संस्कृत कवियों के ऋणी हैं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। हिन्दी का मूल परंपरागत संस्कृत से ही है। हिन्दी के कवि छन्द, रस, अलंकार सब संस्कृत के ग्रन्थों ही से सीखा करते थे, इस लिये संस्कृत कवियों के भाव, बिना प्रयत्न के अनायास ही हिन्दी कवियों के हृदय में उद्भूत होते हैं। इसी रीति से जब से उर्दू कविता पर फारसी का प्रभाव पढ़ना शुरू हुआ तभी से उर्दू कविता में फारसी कवियों के भाव आने लगे।

रहीम स्वयं संस्कृत के पंडित थे। उनका सभा-में अनेक पंडित-विद्वान् हिन्दी कवि-वर्तमान थे। रहीम की कविता में यदि संस्कृत कवियों की उक्तियाँ पाई जायँ तो कोई आश्चर्य नहीं है। इससे तो रहीम का संस्कृत-पांडित्य और व्रजभाषा-प्रेम सूचित होता है। पाठक देखें कि कैसी सरल भाषा में किस सुन्दरता से भावों का समावेश किया गया है और यथार्थ में तो रहीम की विशेषता भी स्वाभाविकता, सरलता तथा सहज सौंदर्यता ही में है।

(१) आदि कवि भगवान वाल्मीकि मुनि का एक श्लोक है:—

हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा।
इदानीमन्तरे जाताः पर्वता सरितो द्रुमाः॥

इसी भाव को रहीम ने भी एक दोहे में कहा है:—

रहिमन इक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन परे पहार॥

यद्यपि रहीम दोहे में 'सरितोद्रुमाः' का भाव नहीं ला सके, परन्तु 'पहार' कह देने के पश्चात्, हमारे विचार से, सरितोद्रुमाः कहने की कुछ आवश्यकता भी नहीं रहती। मुख्य भाव दोहे में अच्छी तरह प्रकट हो गया है। हाँ, घन आनन्द-जी ऐसा नहीं कर सके, उन्होंने केवल इतना लिखने ही में संतोष किया "तब हार पहार से लागत है अब बीचन आइ पहार परे"।

कदाचित् घन आनन्दजी ने रहीम से ही भाव लिया है क्योंकि "बीचन पहार परे" शब्द बिलकुल मिलते हैं।

(२) रहीम का एक बहुत प्रसिद्ध दोहा है:—

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥

किसी संस्कृत कवि के कथन का ही भाव इस दोहे में है।

विकृतिं नेव गच्छन्ति सङ्गदोषेण साधवः ।
प्रावेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते ॥

(३) साधुरेवार्थिभिर्याच्यः क्षीणवित्तोपि सर्वदा ।
शुष्कोपि हि नदीमार्गः खन्यते सलिलार्थिभिः ॥

याचना सज्जन से ही करनी योग्य है चाहे वह क्षीणवित्त (धन-हीन) ही क्यों न हो ।

रहीम ने भी कहा है ।

रहिमन दानि दरिद्रतर, तऊ जाँचिवे जोग ।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुँआ खनावत लोग ।

शायद रहीम के इस सिद्धान्त को ही जानकर याचक वृन्द रहीम की आवनत दशा में भी उनको इतना तंग करते थे कि उनको विवश होकर कहना पड़ा था—

ए रहीम दर दर फिरे, माँगि मधुकरी खाहि ।
यारो यारी छोड़िए, वे रहीम अब नाहि ॥

(४) किसी कवि की अन्योक्ति है—

हेलोल्लासित कल्लोल धिक्ते सागर गर्जितम् ।
तव तीरे तृषाक्रान्तः पान्थः पृच्छति कूपिकाम् ॥

रहीम का दोहा:—

धनि रहीम जल कूप को, लघु जिय पियत अघाय ।
उदधि बडाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥

रहीम श्लोक के समस्त भाव को दोहे में नहीं ला सके, परन्तु बावा दीनदयाल गिरि ऐसा कर सके हैं—

गरजे बातन ते कहा, धिक नीरध गंभीर ।
विकल बिलोकैं कूप-पथ, तृषावत तव तीर ॥

(५) दुर्जन से वैर अथवा प्रीति न करने के लिये किसी कवि ने कहा है:—

दुर्जनेन समं सख्य प्रीति चापि न कारयेत् ।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ॥

रहीम ने भी एक सोरठे में कहा है:—

ओछे को सतसग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों ।
तातो जारे अंग, सीरे पै कारो करे ॥

(६) उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमने तथा ।
सपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥

सूर्य उदय होने के समय जैसा ही लाल होता है वैसा ही अस्त होने के समय होता है। महत् पुरुप संपत्ति और विपत्ति के समय एक समान ही रहते हैं।

रहीम ने इसी भाव को सूर्य के स्थान में चन्द्रमा का वर्णन करके व्यक्त किया है—

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सहि साँति ।
उवत चन्द जिहि भाँति सो, अथवत ताही भाँति ॥

(७) लक्ष्मी की चंचलता प्रसिद्ध है। कभी एक के पास रहती है, कभी उसको छोड़ कर दूसरे के पास चली जाती है। इप चंचलता का कारण किसी संस्कृत कविने यह बताया है कि लक्ष्मी के पिता समुद्र ने यह भूल की है कि लक्ष्मी का विवाह पुराणपुरुप अर्थात् वृद्ध (भगवान) के साथ किया है।

यद्वदन्ति चपलेत्यपवाद नव दूषणमिदं कमलायाः ।
दूषण जलनिधेर्हि भवत्तद्यत्पुराणपुरुषाय ददौताम् ॥

रहीमने इस समस्त भाव को एक दोहे में अच्छी रीति से निभाया है:—

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय ॥

(८) न सौख्य सौभाग्यकरा गुणा नृणां, स्वयं गृहीताः सुदृशां कुचा इव ॥
परैर्गृहीता द्वितयं वितन्वते, न तेन गृह्णन्ति निजं गुणं बुधाः ॥

आत्मश्लाघा करना विद्वान निन्दनीय समझते हैं, उसमें आनन्द नहीं आता। स्त्री को स्वयं अपने कुच-मर्दन करने से आनन्द नहीं होता।

रहीम ने इस भाव को एक दोहे में प्रकट किया है—

ये रहीम फीके दुवौ, जानि महा सतापु।
ज्यों तिय आपन कुच गहे, आपु बड़ाई आपु ॥

(९)—जीवन ग्रहणे नम्रा गृहीत्वा नरुन्नताः।
किं कनिष्ठाः किमुज्येष्ठा घटीयन्त्रस्य दुर्जनाः ॥

जीवन अर्थात् जल (दूसरे पक्ष में प्राण) ग्रहण करने (याचना करने) में नीचे मुख (विनीत), ग्रहण करने के पश्चात् ऊंचे मुख (उद्धत) घट यंत्र (रहट) की तरह दुर्जन होते हैं।

रहीमने इस श्लोक का अनुवाद किया है—

रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठ।
रीतिहि सनमुख होत है, भरी दिखावे पीठ ॥

(१०) याचकनिंदा करते हुए रहीमने लिखा है!

रहिमन याचकता गहे, बडे छोट ह्वै जात।
नारायण हू को भयो, बावन आँगुर गात ॥

यह बात स्पष्ट रूप से कही जाती है कि उपर्युक्त दोहा इस संस्कृत श्लोक का अक्षरशः अनुवाद है:—

याचना हि पुरुषस्य महत्त्वं नाशयत्यखिलमेव तथाहि।
सद्य एव भगवानपि विष्णुर्वामनो भवति याचितुमिच्छन् ॥

(११) इसी प्रकार के रहीम के अन्य दोहे इस प्रकार हैं

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बाँवने नाम॥

अथवा,

माँगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ि काम।
तीन पैड़ वसुधा करी, तऊ बावने नाम॥

इनका भाव भी संस्कृत से ही लिया गया है। हम एक श्लोक देते हैं जिससे यह बात स्पष्टतया विदित हो सकेगी—

अग्रेलघिमा पश्चान्महतापि पिधीयते नहि महिम्ना।
वामन इति त्रिविक्रमभिदधति दशावतार विदः॥

(१२) कुसंगति का दुष्परिणाम दिखाने के लिये संस्कृत में एक श्लोक है:—

सच्छिद्र निकटे वासो न कर्तव्यः कदाचन।
घटी पिबति पानीय ताड्यते झल्लरी यथा॥

रहीम ने भी इसी भाव पर यह दोहा रचा है:—

रहिमन नीच प्रसंग ते, नितप्रति लाभ विकार।
नीर चुरावै सम्पुटी, मारु सहत घरियार॥

(१३) दुर्वृत्तसगतिरनर्थपरम्पराया
हेतुः सता भवति किं वचनीयमत्र।
लङ्केश्वरो हरति दाशरथेः कलत्र
आप्नोति बधनमसौ किल सिंधुराजः॥

रहीम का भी दोहा इसी भाव का इस प्रकार है—

बस कुसङ्ग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस॥

और बहुत से दोहों के भाव संस्कृत श्लोकों से मिलते हैं।

सब यहाँ उद्धृत करने से ग्रंथ-विस्तार का भय है, इस कारण केवल इतने ही श्लोक यहाँ दिये गये हैं।

रहीम और महात्मा कबीरदास

कबीरदासजी रहीम के पूर्ववर्ती कवि हैं। उनके कुछ साखियों में रहीम के कुछ दोहों के भाव ही नहीं मिलते, वरन् कुछ में तो शब्द तक मिलते हैं। उन्हें देख कर संदेह होता है कि रहीम ने कबीरदासजी के केवल भाव ही नहीं लिये हैं, बल्कि पूरी चोरी की है। परन्तु यह बात अवश्य विचारणीय है कि कबीरदासजी ने अपनी कविता लिखी नहीं थी। *लोगों ने बहुत काल तक उसको मौखिक रूप में ही याद रक्खा था। कबीरदासजी के देह-त्याग के पश्चात् उनकी कुछ कविता लिखी गई थी और कुछ तो बहुत बाद में लिपिबद्ध हुई थी। यह अधिक संभव है कि बहुत काल बाद लिपिबद्ध होने के कारण उस कविता में अन्य कवियों के छन्द भी मिल गए हों। यह बात तो निसंदेह कही जा सकती है कि कबीरदासजी की साखियों में ऐसी साखियां अवश्य हैं जो उनके देहावसान के १५० बरस बाद बनी होंगी और जो अब कबीर साहब के नाम से उनके ग्रन्थों में संग्रहीत पाई जाती हैं।

यह बात निर्विवाद है कि तमाखू का प्रचार भारतवर्ष में कबीरदासजी के बहुत पीछे जहाँगीर के समय में हुआ था। परन्तु बेलवेडियर प्रेस में छपे 'कबीर-साखी संग्रह' नामक ग्रन्थ में कुछ साखियाँ दी हैं जिनमें तमाखू की निन्दा है:—

---

* स्वयं कबीरदासजी ने इस तथ्य के प्रमाण मे कहा है:—

मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हात।
चारिउ जुग को महातम, मुखहि जनाई बात॥

गऊ जो विष्ठा भच्छई, विप्र तमाखू भङ्ग।
सस्तर बाँधे दर्सनी, यह कलिजुग का रङ्ग॥
भांग तमाखू छूतरा, अफयूँ और सराब।
कह कबीर इनको तजे, तब पावे दीदार॥

तमाखू का इतना प्रचार कि ब्राह्मण भी उसको खाने-पीने लगे हो, जहाँगीर के भी बाद ही हुआ होगा। यह साखियाँ कबीरदासजी के दो सौ वर्ष बाद लिखी गई होंगी। जब कबीरदासजी की कविता में उनके इतने समय बाद की भी कविता मिल गई है तो यह भी संभव है कि रहीम के वे दोहे जो कबीर साहब के सिद्धान्त के अनुकूल हैं उनकी कविता में मिल गए हों। अस्तु, यहां पर हम कबीरदासजी की वे साखियां जो रहीम के दोहों से मिलती हैं लिखते हैं। रहीम-रत्नावली के दोहों का नम्बर उनके आगे लिखा जाता है, जिससे मिलाने में सुविधा हो।

(१) जो विभूति साधुन तजी, तिहि विभूति लपटाय।
जौन वमन करि डारिया, स्वान स्वाद सो खाय॥ ८३॥

(२) भजूँ तो कोहै भजन को, तजूँ तो को है आन।
भजन तजन के मध्य में, सो कबीर मन आन॥ १३१॥

(३) मान बड़ाई जगत की, कूकर की पहिचानि।
प्रीति करे मुख चाटई, बैर किये तन हानि॥ १८२॥

(४) मागन गये सो मरि रहे, मरे सो मागन जाहिं।
तिन सो पहिले वे मुए, होत करत जो नाहि॥ २३४॥

(५) नवन नवन बहु अन्तरा, नवन नवन बहु बान।
ये तीनों बहुते नवैं, चीता चोर कमान॥ १५४॥

(६) छिमा बड़िन को चाहिये, छोटन को उतपात।
कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात॥ ५५॥

(७) वड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पथी को छाया नही, फल लागे अति दूर ॥ २७० ॥

(८) वृच्छ कवहुँ नहि फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर ॥ ८८ ॥

(९) वूंद जो परी समुंद में, सो जानत सव कोय।
समुद समाना बुन्द मे, जाने विरला कोय ॥ २७७ ॥

इनके अतिरिक्त और भी कई साखियाँ ऐसी हैं जिन के भाव रहीम के दोहों से मिलते हैं। परन्तु विस्तार-भय से नहीं लिखी जातीं।

रहीम और सूरदासजी

मुसलमान होने पर भी रहीम श्रीकृष्ण और भगवान रामचन्द्र के पूर्ण भक्त थे। कहा जाता है कि इनको श्रीकृष्ण भगवान का इष्ट था। भक्तमाल की टीका में रहीम सवंधी एक कथा भी है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी से इनकी भेंट हुई थी। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सूरदासजी से भी इनका समागम हुआ था, क्योंकि सूरदासजी का गोलोकवास सं० १६२० के लगभग हो गया था। उस समय रहीम शायद विद्याभ्यास ही कर रहे होंगे। परन्तु कृष्णभक्त होने के कारण इन्होंने सूरदासजी की कविता का आस्वादन अवश्य किया होगा। नहीं कहा जा सकता रहीम का व्रजभाषा-प्रेम और उस पर उनका इतना आधिपत्य सूरदासजी तथा अन्य कृष्णभक्त कवियों की कविता के कारण है या नहीं। यदि रहीम कृत रासपंचाध्यायी मिल जाती, तो इस विषय में कुछ निश्चित रूप से कहा जा सकता था। सूरदासजी तथा रहीम की कविताओं के समान भाव के कतिपय छंद यहां पर दिये जाते हैं:—

(१) सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, सङ्गत को फल सूर ॥ —सूरदास

कदली सीप भुजङ्ग मुख, स्वॉति एक गुन तीन।
जैसी सङ्गति बैठिये, तेसोई फल दीन॥ —रहीम

(२) (अ) नैना लोभहिं लोभ भरे ॥
जैसे चोर भरे घर ही में, बैठत उठत खरे।
अङ्ग अङ्ग शोभा अपार निधि, लेत न सोच परे ॥

(आ) रूपदेखि तन थकित रही हौ, मानो भौन भरे की चोरी।

(इ) ॲखिया अजान भई ॥
यो भूली ज्यों चोर भरे घर, चोरी निधि न लई।
बदलत भोर भयो पछतानी, करते छाड़ि दई ॥ —सूरदास
करम हीन रहिमन लखो, धॅस्यो बडे घर चोर।
चिंतित ही बड़ लाभ के, जागत है गो भोर ॥ —रहीम

(३) कहियो जाय सूर के प्रभु सों, केर पास ज्यो बेर। —सूरदास
कहु रहीम कैसे निभे, बेर केर को संग। —रहीम

(४) जो छिपा छरद करि सकल सतनि तजी, तासु मनि मूढ़ रस ठानी
—सूरदास
जो विपया सन्तन तजी, मूढ ताहि लपटात।
ज्यो नर डारत बमन करि, स्वान स्वाद सों खात॥ —रहीम

(५) मानत नही लोक-मर्यादा हरि के रग मजी।
सूरश्याम को मिलि चूने हरदी ज्यो रग रजी ॥ —सूरदास
रहिमन प्रीति सराहिये, मिले होत रग दून।
ज्यो जरदी हरदी तजे, तजे सफेदी चून ॥ —रहीम

(६) जोबन रूप दिवस दस ही को ज्यों ॲजुरी को पानी। —सूरदास
घटत घटत रहिमन घटे, ज्यों कर लीन्हे रेत ॥ —रहीम

(७) कुसमय मीत का को कवन ?
कमल को रवि परम हित है, कहत श्रुति अस बयन।
घटत वारिधि भयो दारुण, करत कमलन दहन ॥ —सूरदास
जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय ।
रहिमन अंबुज अंबु बिन, रवि नाहिन हित होय ॥ —रहीम

(८) व्याध मिरगा बाण वेध्यो, कोटि कानन गवन ।
अंग शोणित भयो वैरी, खोज दीनो तवन ॥ —सूरदास
रहिमन असमय के परे, हित अनहित है जाय ।
बधिक बधै मृग बान सो, रुधिरै देत बताय ॥ —रहीम

रहीम और गोस्वामी तुलसीदासजी

गोस्वामी तुलसीदासजी और रहीम में परम मित्रता थी। दोनों में पत्र-व्यवहार भी था, तो मिले भी अवश्य होंगे। दोनों ने एक दूसरे की कविता देखी होगी। रहीम को बरवै छन्द बहुत प्रिय था। उन्होंने कुछ बरवे बनाकर गोस्वामी तुलसीदासजी के पास भेजे थे और अनुरोध किया था कि गोस्वामीजी भी बरवे छंद में कविता करें। इसी ही अनुरोध के कारण गोस्वामीजी ने बरवे रामायण निर्माण की थी। गोस्वामीजी के वैकुण्ठ वास के सात वर्ष पश्चात् ही उनके पट्ट शिष्य बाबा बेनीमाधवदास ने "गुसांई-चरित" नाम से गोस्वामीजी का जीवनचरित्र लिखा है, उसमें इसका वर्णन है:—

कवि रहीम बरवे रचे, पठये मुनिवर पास।
लखि तेइ सुन्दर छन्द में, रचना कियेउ प्रकास॥

यह बात संवत् १६६९ की मालूम होती है। रहीम-रत्नावली में पृष्ठ ६३ पर हमारी नई खोज द्वारा प्राप्त जो बरवे हमने प्रकाशित कराए हैं उनके मंगलाचरण के बरवे गोस्वामी तुलसीदास-

जी के रामचरितमानस के मंगलाचरण के सोरठों से मिलते हैं। रामचरितमानस के सोरठे और रहीम के बरवे यहाँ मिलान के लिये उद्धृत किये जाते हैं:—

(१) जिहि सुमिरत सिध होय, गणनायक करिवर बदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि-रासि सुभ-गुण-सदन॥ —तुलसी
वन्दहुँ विघन विनासन रिधि सिधि ईस।
निर्मल बुधि प्रकासन सिसु ससि सीस॥ —रहीम

(२) वन्दहुँ पवन कुमार, खल वन पावक ज्ञान-धन।
जासु हृदय आगार, बसहि राम सर-चाप-धर॥ —तुलसी
ध्यावहुँ विपति विदारन, सुवन समीर।
खल दानव वन जारन, प्रिय रघुवीर॥ —रहीम

(३) वन्दौ गुरु-पद-कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि।
महामोह तम-पुंज, जासु वचन रविकर-निकर॥ —तुलसी
पुनि पुनि वन्दहुँ गुरु के पद जल जात।
जिहि प्रसाद ते मन के तिमिर बिलात॥ —रहीम

गोस्वामीजी ने भी रहीम के अनुरोध जो स्वीकार करके बरवे रामायण सा छोटा किन्तु उत्कृष्ट ग्रन्थ निर्माण कर दिया।

रहीम और तुलसीदासजी से साहित्य-प्रेमी मित्रों की कविता में यदि सदृश भाव मिलें तो कौन आश्चर्य है, यदि न मिले तो आश्चर्य अवश्य होना चाहिये। दोनों में से किसी पर भावापहरण का दोष लगाना उचित नहीं होगा।

रहीम और गोस्वामीजी के सदृश भाव के अनेक उदाहरण टिप्पणी में यथास्थान दिये गये हैं, कुछ यहाँ पर और दिये जाते हैं:—

(४) परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस।
बामन ह्वै बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस॥ —रहीम
बिन प्रपञ्च छल भीख भलि, लहिय न हिये कलेस।
बामन ह्वै बलिको छल्यो, भलो दियो उपदेस॥ —तुलसी

(५) कहु रहीम कैसे निभै, बैर केर को सङ्ग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अङ्ग॥ —रहीम
नीच निरादर ही सुखद, आदर दुखद बिसाल।
कदली बदरी बिटप गति, पेखहु पनस रसाल॥ —तुलसी

(६) जब लगि बित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिन, रवि नाहिंन हित होय॥ —रहीम
आपन छोड़ो साथ जब, तादिन हितू न कोय।
तुलसी अंबुज अंबु बिन, तरनि तासु रिपु होय॥ —तुलसी

(७) रहिमन धोखे भाव से, मुख तें निकसें राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम॥ —रहीम
तुलसी जिनके मुखन ते, धोखेहु निकलत राम।
तिन के पग की पगतरी, मेरे तन को चाम॥ —तुलसी

और भी बहुत उदाहरण इन दोनों मित्रों के सदृश भाव के मिलते हैं, सब को यहां देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

रहीम और रसखान

यह दोनों मुसलमान कवि समकालीन और गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के भक्त थे। दोनों ही ने भगवान श्रीकृष्ण के प्रेम रङ्ग में रङ्ग कर कविता की है। इनके सदृश भाव के एक दो उदाहरण दिये जाते हैं।

(१) रहिमन को कोउ का करे, ज्वारी चोर लबार।
जो पत राखनहार है, माखन चाखनहार॥ —रहीम

काहे को सोच करे रसखानि कहा करिहै रविनंद विचारो।
ताखन जाखन राखिय माखन चाखनहारो सो राखनहारो ॥
—रसखान

(२) पलटि चली मुसकाय, दुति रहीम उपजाय अति।
वाती सी उसकाय, मानो दीनी दीप की ॥ —रहीम

(अ) यों जग जोति उठी तन की उसकाय दई मानो वाती दिया की।
(आ) जोबन जोति सो यो दमके उसकाय दई मानो वाती दिया की।
—रसखान

(३) परम ऊजरी गूजरी, दह्यौ सीस पै लेइ।
गोरस के मिसि डोलही, सो रस नैकु न देइ ॥ —रहीम
जानत हौं जियकी रसखानि सु काहे को ऐतिक बात बढ़ैहो।
गोरस के मिसि जो रस चाहत सो रस कान्ह जू नैकु न पैहो॥
—रसखान

(४) हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सरपूर।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दयो पुनि दूर ॥ —रहीम
मोहन छबि रसखानि लखि, अब दृग आपनि नाँहि।
ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाँहि ॥ —रसखान

रहीम और विहारी

महाकवि विहारी की कविता में भी रहीम के कुछ भाव पाये जाते हैं। दोनों ने सतसई तो अवश्य रची, परन्तु दोनों की कविता का उद्देश्य तथा प्रयोजन भिन्न था। परन्तु फिर भी समान भाव के छंद अवश्य मिलते हैं।

(१) रहीम का एक दोहा है जो उन्होंने उस समय कहा था जब उनको गोवर्धननाथजी के मंदिर में नहीं घुसने दिया गया था और श्रीनाथजी ने गोविन्दकुण्ड पर स्वयं दर्शन दिये थे।

खैंचि चढ़नि ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति।
आजु काल्ह मोहन गही, बंस दिया की रीति॥ —रहीम

बिहारी ने इसी भाव को पतंग का वर्णन करके कहा है—

दूर भजत प्रभु पीठ दे, गुन बिस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ही, चग रंग गोपाल॥ —बिहारी

(२) धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बढ़ाई कौन है, जगत पियासो जाय॥ —रहीम

बिहारी जयपुर जोधपुर में रहे थे, उन्होंने वहाँ मतीरा देखा था, इसलिये मतीरा का वर्णन करके इसी भाव को प्रकट किया है:—

विषम वृषादित की तृषा, जिये मतीरनु सोधि।
अमित अपार अगाध जल, मारो मूँड पयोधि॥ —बिहारी

(३) दीरघ दोहा अर्थ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यो रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं॥ —रहीम
सतसईया के दोहरा, ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगे, घाव करें गभीर॥ —बिहारी

(४) प्रीतस्त्वं यदि चेन्नरीक्ष भगवन् स्वप्रार्थित देहि मे।
नो चेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशी भूमिकां॥ —रहीम
मोहू दीजे मोप, ज्यो अनेक अधमनु दियो।
जो बाँधे ही तोष, तौ बाँधो अपने गुननु॥ —बिहारी

(५) कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचते नाँहि।
ज्यों नैना सैना करें, उरज उमेठे जाँहि॥ —रहीम
क्यों बसिये क्यो निबहिये, नीति नेहपुर नाहि।
लगा लगी लोयन करें, नाहक मन बँध जाँहिं॥ —बिहारी

(६) रहिमन छोटे नरनु सो, होत बड़ो नहि काम।
मड़ो दमामो ना बने, सौ चूहे के चाम॥ —रहीम

कैसे छोटे नरनु ते, सरत बड़न को काम ।
मढ़्यो दमामो जात क्यों, कहि चूहे के चाम ॥ —विहारी

(७) करत नही अपरधवा, सपनेहु पीव ।
मान करै की सधवा, रहि गइ जीव ॥ —रहीम
रात दिना हौसे रहे, मान न ठिक ठहराय ।
जेतो औगुन ढूँढ़िये, गुनै हाथ परि जाय ॥ —विहारी

(८) खेलत जानेसि रोलिया, नंदकिसोर ।
छुइ वृषभानु कुमरिआ, भैगा चोर ॥ —रहीम
दोऊ चोर मिहीचनी, खेलु न खेल अघात ।
दुरत हिये लपटाइके, छुवत हिये लपटात ॥ —विहारी

रहीम और मतिराम

मतिराम रहीम के परवर्त्ती कवि हैं। संभव है जहाँगीर के दरबारमें रहीम से मिले हों। रहीमकी कविता का जितना प्रभाव मतिराम पर पड़ा है, उतना अन्य किसी हिन्दी कवि पर नहीं पड़ा प्रतीत होता। मतिरामका सबसे प्रसिद्ध और सबमें उत्कृष्ट ग्रंथ 'रसराज' है। रसराजके कर्ता होने ही के कारण मतिराम 'हिन्दी नवरत्न' में स्थान पा सके हैं। कहा जाता है कि "हिन्दीमें सर्वसम्मतिसे माधुर्य और लालित्य गुण प्रधान हैं। इन सद्गुणोंकी नींव मतिरामके द्वार पड़ी।......मधुर अक्षरोंका प्रयोग मतिरामने प्रायः सबसे अच्छा किया है......इस एक ही गुणसे मनुष्य जाति के बड़े उपकारक हुए।" *

रसराजमें शृङ्गार रसान्तर्गत नायिकाभेदका वर्णन है। रसराजका नायिकाभेद, रहीम के बरवे नायिकाभेद पढ़ने

* हिन्दी नवरत्न (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ ३६६

के पश्चात्, वरन् यह कहना उचित होगा कि, उसके आधार पर ही रचा गया है। हमारे ऐसा कहने का कारण यह है कि रसराज में जो उदाहरण नायिका भेद के दिये गये हैं, उनमें से बहुतों के भाव बरवे नायिकाभेदसे लिये गये हैं। कहीं-कहीं तो मुख्य-मुख्य शब्द भी रहीमके ही प्रयोग किये हैं। बरवे नायिकाभेद और रसराजके उदाहरणोंको सरसरी रीति से ही पढ़ने से यह बात भलीभाँति विदित हो जाती है। पं० कृष्णविहारी मिश्रजी ने 'मतिराम-ग्रंथावली' की बृहद् भूमिका में मतिराम और रहीमके भाव-सादृश्यका वर्णन करते हुए मतिराम के इस रीतिपर ऋणी होनेका वर्णन नहीं किया है। और न मिश्रबंधुविनोद तथा हिन्दी नवरत्नकारोंने ही इस तथ्यका स्पष्टीकरण किया है। 'रहीम', 'रहिमन विलास' और 'रहीम कवितावली' के कर्त्ताओंको भी यह बात ध्यान में नहीं आई। हम कुछ उदाहरण बरवे नायिकाभेद और रसराजसे अपने कथन की पुष्टि में देते हैं:—

१ प्रथम अनुसयना—

ग्रीषम दहत दवरिया, कुञ्ज कुटीर।
तिमि तिमि तकत तरुनअहिं, बाढ़त पीर॥ —रहीम
ग्रीषम ऋतु मे देखि कै, बन मे लगी दवारि।
एक अपूरब बात यह, जरत हिए वर नारि॥ —मतिराम

२ द्वितीय अनुसयना—

जनि मरु रोइ दुलहिआ, करि मन ऊन।
सघन कुज ससुररिआ, औ घर सून॥ —रहीम
केलि करैं मधुमत्त जहँ, घन मधुपन के पुंज।
सोच न कर तुव सासुरे, सखी! सघन बन कुंज॥ —मतिराम

३ तृतीय अनुसयना—

मितवा करनि पसुरिआ, सुमन सपात।
फिरि फिरि ताकि तरुनिआ, मन पछितात॥—रहीम
छरी सपल्लव लाल कर, लखि तमाल की हाल।
कुम्हिलानी उर साल धरि, फूल माल ज्यों बाल॥—मतिराम

पाठक देखेंगे कि तीनों प्रकार की अनुसयनाओं के उदाहरणों के भाव मतिराम ने रहीम से ही लिये हैं। भावसाम्य के साथ-साथ शब्दसाम्य तो बहुत ही आश्चर्यजनक है। शब्द-साम्य का दिग्दर्शन कराने के हेतु मुख्य-मुख्य शब्द पाद-रेखा द्वारा सूचित किये गये हैं। और भी उदाहरण लीजिये—

४ अन्य संभोग दुःखिता—

मोहित हरवर आवत[1], भौ पथ खेद।
रहि रहि लेत उससवा, औ तन स्वेद॥—रहीम
कहत तिहारो रूप यह, सखी पैंड़[2] को खेद।
ऊँची लेत उसास है, कलित सकल तन स्वेद॥—मतिराम

५ प्रेमगर्विता—

औरन पाय जवकवा, नाइन दीन।
तुम्हे अगोरत गोरिया, न्हान न कीन॥—रहीम
औरन के पावन दियो, नायनि जावक लाल।
प्रान पियारी रावरी, परखति तुम्हे रसाल॥—मतिराम

६ मुग्धा खंडिता—

सखि सिख सीख, नवेलिआ कीन्हेसि मान।
पिय लखि कोप भवनवा ठानेसि ठान॥—रहीम

---

१ पाठान्तर—सखि इत हरवर आवत। २ पैंड़=मार्ग, रास्ता।

बाल सखिन की सीख तें, मान न जानति ठानि।
पिय बिन आगम भौन में, बैठी भौहे तानि॥—मतिराम

ऐसा मालूम होता है कि उपर्युक्त वरवे में 'लखि' पाठ अशुद्ध है। शुद्ध पाठ 'बिन' ही होगा, क्योंकि मुग्धा होने के कारण नायिका स्वयं मान करना नहीं जानती। सखियों के सिखाने से मान तो करती है, परन्तु अनसमझ होने के कारण पति के बिना ही कोपभवन में मान ठान कर वैठी है। 'रहीमन-विलास' तथा नकछेदी तिवारी की पुस्तक में 'बिन' ही पाठ है। परन्तु हम ने विवश होकर अपनी प्राचीन प्रति के अनुसार 'लखि' पाठ ही मूल में दिया है।

७ पुनः मुग्धा खंडिता—

सीस नवाइ नवेलिआ, निचवा जोइ।
छिति खनि छोर छिगुनिआ, सुसुकनि रोइ॥—रहीम

लिखै करके नख सो पग को नख, सीस नवाय के नीचे ही जोवै।
बाल नवेली न रूसनो जानति, भीतर भौन मसूसन रोवै॥—मतिराम

८ परकीया खंडिता—

जेहि लखि सजन सगेइया, छुट घर वार।
अपने हति पिअरवा, सोच परार॥—रहीम

कोउ कितेकौ उपाय करो कहुँ होत है अपने पीउ पराए।—मतिराम

९ मुग्धाकलहांतरिता—

आइहु अबहिं गवनवा, तुरतहिं मान।
अब रस लागि गोरिअवा, मन पछुतान॥—रहीम

आई गौने काल की, सीखी कहाँ सयान।
अब ही ते रूसन लगी, अब ही तें पछुतान॥—मतिराम

१० मुग्धा विप्रलब्धा—

मिलेउ न कंत सहेटवा, लखि उड़राइ ।
धनियाँ कमल वदनियाँ, गौ कुँमिलाइ ॥—रहीम

मिल्यो न कत सहेट में, लख्यो नखत को राय ।
नवल बाल को कमल सो, गयो वदन कुँमिलाय ॥—मतिराम

११ मुग्धा उत्कंठिता—

गौ जुग जाम जमनिआ, पिय नहि आइ ।
राखेहु कौन सवतिआ, दहु बिलमाइ ॥—रहीम

बीति गई जुग जाम निसा मतिराम मिटी तम की सरसाई ।
जानति हौ कहुँ और तिया से रहे रस में रमि कै रसराई ॥—मतिरा

१२ अनुकूल नायक—

करत नही अपरधवा, सपनेहुँ पीव ।
मान करै की सधवा, रहिगइ जीव ॥—रहीम

सपनेहू मनभावतो करत नहीं अपराध ।
मेरे मन ही में रही, सखी मान की साध ॥—मतिराम

१३ मुग्धा अभिसारिका—

चली लिवाइ नवेलिअहिं, सखि सव सग ।
जस हुलसत गो गोदवा, मत्त मतग ॥—रहीम

चली अली नवलाहिं लै, पिय पै साजि सिंगार ।
ज्यों मतग अँड़दार को, लिये जाति गॅड़दार ॥—मतिराम

१४ परकीया प्रवत्स्यतिपतिका—

मितवा चलेउ विदेसवा, मन अनुरागि ।
तिय की सुरिति गगरिया, रहि मग लागि ॥—रहीम

मोहन ललाको सुन्यो चलन विदेस भयो...
......नागरि नवेली रूप आगरि अकेली रीती,
गागरी ले ठाढ़ी भई बाट ही के घाट मे ॥—मतिराम

१५ परकीया आगतपतिका—

पूछत चली खबरिया, मितवा तीर।
नैहर खोज तिरिअवा, पहिरि सुचीर ॥—रहीम
सुन्यो मायके ते वहै, आयौ बाम्हनु कंत।
कुसल बूझिवे के मिसहि, लीनो बोलि इकंत ॥—मतिराम

१६ परिहास—

विहंसत भँउह चढ़ाये, धनुष मनोज।
लावत उर उपटनवाँ, ऐठि उरोज ॥—रहीम
भुज फुलेल लावत सखी, कर चलाय मुसकाय।
गाढ़े गहे उरोज पिय, बिहँसी भौह चढाय ॥—मतिराम

इसी तरह के और बहुत से उदाहरण रसराज में से दिये जा सकते हैं, जिन में मतिराम ने रहीम के भाव ज्यों के त्यों उन्हीं के शब्दों में बहुत थोड़े हेर फेर के साथ लिये हैं। ऐसा पूर्ण सादृश्य देखकर किसी को संदेह हुए बिना नहीं रह सकता कि रसराज का निर्माण बरवे नायिकाभेद के आधार पर ही किया गया है। मतिराम के सबसे उत्कृष्ट ग्रन्थ की उत्कृष्टता रहीम की कविता पर ही निर्भर है।

केवल रसराज ही में नहीं, मतिराम-सतसई में भी रहीम की कविता का समुचित प्रभाव प्रत्यक्ष दीख पड़ता है। उसके केवल दो चार ही उदाहरण दिये जाते हैं:—

(१) खेलत जानेसि रोलिया, नंदकिसोर।
छुइ वृषभान-कुमरिया, भैगा चोर ॥—रहीम

छुवत परस्पर हेर कै, राधा नंदकिशोर।
सब में वेई होत है, चोर मिचहनी चोर ॥ ‡—मतिराम

(२) वाहर लैके दियवा, वारन जाय।
सास ननद घर पहुँचत, देत बुझाय ॥ —रहीम
बार बार वा गेह सों, बारि बारि लै जाति।
काहे ते बिन वात ही, बाती आजु बुझाति ॥ —मतिराम

(३) मन सों कहाँ रहीम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान।
देखि दृगनि जो आदरै, मन तेहि हाथ बिकान ॥ —रहीम
मन्त्रिनि के बस जो नृपति, सो न लहतु सुख साज।
मनहि वाँध दृग देत है, मनहुँ मार को राज ॥ —मतिराम

(४) नव नागर पद परसी, फूलत जौन।
मेटत सोक असोक सु, अचरज कौन ॥ —रहीम
तेरो सखी सुहाग वर, जानत है सब लोक।
होत चरण के परस पिय, प्रफुलित सुमन असोक ॥ —मतिराम

इन उदाहरणों से यह वात निर्विवाद सिद्ध होती है कि मतिराम की कविता सर्वथा रहीम की ऋणी है। वास्तव में तो मतिराम की कविता में रहीम के भाव ही नहीं मिलते हैं, किन्तु जो माधुर्य्य और प्रसाद गुण मतिराम की कविता में पाये जाते हैं उसका मुख्य कारण रहीम की कविता का प्रभाव ही है। रहीम भी संयुक्त वर्णों का बहुत कम प्रयोग करते हैं। इनका 'नगरशोभा वर्णन' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। माधुर्य्य और लालित्य ही मतिराम की कविता के मुख्य गुण हैं। उपर्युक्त उदाहरणों के कारण ही कहना पड़ता है कि मतिराम की कविता पर रहीम का पूर्ण प्रभाव पड़ा है। मतिराम जैसे महाकवि भी

---

‡ यह दोहा रसराज मे भी योग शृंगार के उदाहरण मे दिया है।

रहीम के ऋणी हैं। हिन्दी में नायिकाभेद विषयक ग्रंथों में जब 'बरवे नायिकभेद' एक आदि ग्रन्थों में से है, तब रसराज रचते समय मतिराम ने उसके भाव लिये हों तो आश्चर्य ही क्या ?

यद्यपि मतिराम पर रहीम के भावाऽपहरण का दोपारोपण करना अनुचित है तथापि यह कहना अत्युक्ति न होगा कि मतिराम की, रसराज के कारण, नवरत्नों में जो गणना होती है उसका वास्तविक कारण रहीम-कृत बरवे नायिकाभेद ही है। जहाँगीर की आज्ञा से आगरे में फूलमंजरी की रचना करने-वाले मतिराम कुछ समय के लिये रहीम के समकालीन अवश्य थे। और जब दोनों का जहाँगीर के दरबार से संबंध भी था, तो परस्पर परिचय अवश्य हुआ होगा। केशव, गंग, मंडन, प्रसिद्धि आदि अगणित कवियों की तरह मतिराम को भी काव्य-प्रेमी रहीम के यहाँ आश्रय मिला हो तो क्या संदेह हो सकता है ? यह अनुमान करना असंगत नहीं हो सकता कि रहीम ने मतिराम को काव्य-रचना करने के लिये अवश्य ही प्रोत्साहित किया होगा। यदि रहीम मतिराम के आश्रयदाता अथवा काव्य-गुरु हों तो आश्चर्य्य ही क्या ? परन्तु मतिराम को कविता में रहीम के इस अनुग्रह के लिये रहीम के प्रशंसारूप एक भी छंद नहीं मिलता। क्या मतिराम की यह अकृतज्ञता क्षम्य है ?

रहीम तथा मतिराम का परस्पर संबंध निश्चित करने के लिये उनकी कविताओं मे से जो साम्य हमें दिखाई दिया, वह तो हम ऊपर दिखा चुके। एक बाह्य प्रमाण भी हमारे पास है, जिससे यह भासित होता है कि मतिराम ने रहीम का बरवे नायिकाभेद केवल पढ़ा ही नहीं था, किन्तु उसे अच्छी प्रकार मनन करके उसे चारु रूप से संपादित भी किया था।

हमको खोज में एक ग्रन्थ मिला है, जिसमें रहीम के इन बरवों के साथ मतिराम के दोहे भी दिये हैं। मतिराम के दोहे रसराज में वर्णित लक्षण-सूचक दोहे हैं। इस प्रति में रसराज-वाले नायिका भेद के दोहे लक्षणरूप में तथा रहीम-रचित बरवे उदाहरणरूप में दिये गये हैं। इसलिये इस प्रकार के संग्रह से लक्षण उदाहरण सहित ग्रन्थ में संपूर्णता का भाव आ गया है। इस प्रकार की एक प्रति काशीनरेश के सरस्वती भवन में भी है और ऐसी ही एक प्रति पं० कृष्णविहारीजी मिश्र के पास भी है और कदाचित नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित रहीम-कवितावली में बरवे नायिका भेद उसी प्रति के आधार पर दिया गया है। इन प्रतियों के अन्तिम दोहे इस प्रकार से हैं—

"लच्छन दोहा जानिये, उदाहरन बरवान।
दूनो के संग्रह भये, रस सिंगार निर्मान॥
यह नवीन संग्रह सुनो, जो देखे चित देइ।
बिबिध नायिका नायकनि, जानि भली विधि लेइ॥
॥ इति श्री नायिकाभेद बरवा छंद पूर्ण॥"

इन दोहों से यह सिद्ध है कि इस प्रति में लक्षण-सूचक दोहों तथा उदाहरण-सूचक बरवों का संग्रह किया गया है। संग्रह एक ही कवि की विविध कविताओं का भी होता है और दो वा अनेक कवियों की कविताओं का भी। अब निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित होते हैं—

१—क्या दोहे तथा बरवे एक ही कवि-रचित हैं अथवा दो कवियों के? और जो यदि एक ही कवि के रचित हैं तो वह मतिराम के हैं या रहीम के?

२—संग्रहकार कौन है? मतिराम, रहीम वा अन्य कोई व्यक्ति?

दोहे मतिराम-कृत प्रसिद्ध ही हैं और बरवे रहीम रचित। अत: यह अनुमान करना कि दोनों एक ही कवि की रचनायें हैं उतना ही हास्यास्पद होगा जितना कि यह कहना कि शिवराज-भूषण के कर्ता भूषण शिवाजी के समकालीन नहीं थे। दोहे अवश्य मतिराम के हैं, और बरवे रहीम के। हिन्दी में नायिका-भेद विषयक ग्रन्थ रचने की रीति रहीम के समय से ही चली है और संभवत: रहीम अथवा केशवदास ने चलायी है। संभव है इस विषय का आदिग्रन्थ होने के कारण रहीम को लक्षण देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई हो। इस कारण लक्षण रहीम ने नहीं रचे * और पुस्तक की अपूर्णता समझ कर लक्षण-सूचक दोहे उसमें किसी ने संग्रहीत कर दिये हैं। जब इस संग्रह में एक ही कवि की रचना नहीं है तो पहिले प्रश्न का उत्त-रार्ध व्यर्थ ही है।

रसराज का निर्माण काल रहीम की मृत्यु के पश्चात् अनु-मानत: संवत् १६९० से १७०० तक हुआ कहा जाता है×। इस कारण रहीम तो स्वयं संग्रहकार हो ही नहीं सकते। मतिराम

---

* रहीम रचित बरवे नायिकाभेद में एक बरवा लक्षण-सूचक मिलता है। वह इस प्रकार है—

पति उपपति वैसिकवा, त्रिविध बखानि।
विधि सों ब्याहो गुरजन, पति सो जानि॥

परन्तु यह बरवा हमारी तथा काशीनरेश की प्रति में नहीं है और न मिश्र जी की प्रति में ही है। मतिराम का दोहा भी इससे मिलता है—

पति, उपपति, वैसिक त्रिविध, नायक भेद बखानि।
विधिसों ब्याहो पति कहे, कवि कोविद मति जानि॥

× मतिराम ग्रंथावली पृष्ठ २२२

अथवा अन्य किसी ने संग्रह किया है। अन्तिम दो दोहे, जो ऊपर उद्धृत किये हैं, वह संग्रहकार की रचना है। इस कारण संग्रहकर्ता अवश्य एक कवि है। जब संग्रहकर्ता कवि है, तब वह दूसरे के रचित लक्षण के दोहे क्यों देता? वह स्वयं अपने बनाए लक्षण के दोहे दे सकता था। परन्तु जब दोहे मतिराम के ही हैं, तब तो यही संभव प्रतीत होता है कि मतिराम ने ही यह संग्रह किया हो। इस अनुमान के विरुद्ध कोई प्रमाण भी तो नहीं है। फिर इस पर क्यों न विश्वास किया जाय। जब रहीम को कविता से मतिराम ने लाभ उठाया है और जब दोनों सम-कालीन थे और परस्पर परिचय भी जहाँगीर के दरबार में हुआ, तो यह अवश्य विश्वास किया जा सकता है कि मति-राम ने ही यह संग्रह किया है। इन्हो कारणों से हम विश्वास करते हैं कि यह संग्रह रहीम के बरवों की रचना से प्रसन्न होकर स्वयं मतिराम ने ही उसे पूर्णता का रूप देने के लिये अपने रसराज के लक्षण के दोहे उसमें सम्मिलित करके किया है। एक नहीं तीन-तीन प्रतियों में इस प्रकार का संग्रह मिलना भी यह सूचित करता है कि उसका प्रचार काफी था। इस बाह्य प्रमाण द्वारा भी यह प्रतिपादित होता है कि मतिराम की कविता रहीम की सब प्रकार से ऋणी है।

रहीम और हिन्दी के अन्य कवि

हमने यहाँ पर संस्कृत के और हिन्दी के कुछ उत्कृष्ट कवियों के ही सादृश्य भाव के छंद दिये हैं। विस्तारभय के कारण वृन्द, रसनिधि, बेरीसाल, उसमान, निहाल, जोधपुर-नरेश महाराज जसवंतसिंह, गंग, अहमद, हरिवंश, व्यास और वाजिद आदि के समान भाव के छंद यथास्थान टिप्पणी में ही दिये गए

हैं, उनको यहाँ पुनः प्रकाशित करना अनावश्यक है। यहाँ केवल दो एक छंद अन्य कवियों के उदाहरणार्थ और दिये जाते हैं।

१–पुरुष पूजे देवरा, तिय पूजे रघुनाथ।
कहि रहीम दोउ न बने, पड़ो बैल को साथ॥ —रहीम
खसम जो पूजे देहरा, भूत पूजनी जोय।
एके घर में दो मता, कुशल कहाँ से होय॥
—भारतेन्दु हरिश्चद्र

२–थोरो किये बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरिधर कहत न कोय॥ —रहीम
साईं एके गिरि धर्‍यो, गिरिधर गिरिधर होय।
हनूमान बहु गिरिधरे, गिरधर कहत न कोय॥
× × × ×
कहि गिरधर कविराय, बड़न की बड़ी बड़ाई।
थोरेही यश होय, यशी पुरुषन को साईं॥
—गिरधर कविराय

३–रहिमन निज मन की बिथा, मनही राखो गोय।
सुन अठलैहै लोग सब, बांटि न लैहैं कोय॥ —रहीम
हानि होय कछु आपुनी, मति कहि काहू सोय।
हितु बिलखे हरखे अहितु, दुहू भाँति दुख होय॥ —अज्ञात

रहीम-सम्बन्धी किंवदन्तियाँ

प्रसिद्ध पुरुषों के विषय में जो जनश्रुतियाँ साधारण जन-समाज में प्रचलित हो जाती हैं, वे सर्वदा निराधार नहीं होतीं। यद्यपि उनमें कल्पना की मात्रा अधिक होती है तथापि उनका ऐतिहासिक मूल्य भी कुछ न कुछ अवश्य होता है। किंवदंतियों में मनोरंजन की सामग्री भी होती है, इस कारण

वे मौखिक रूप में ही अनेक शताब्दियों तक जीवित रहती हैं। भोज और कालिदास अथवा अकबर-बीरबल के नाम से अनेक मनोरंजक दंतकथाएँ प्रचलित हैं, और उनमें सभी इतिहास-सिद्ध नहीं हैं। परंतु उनमें वर्णित विषय से उन पुरुषों के जीवन तथा रहन-सहन-संबंधी अनेक बातों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अनेक छोटी-छोटी बातों से ही उन महापुरुषों के चरित्र, स्वभाव आदि का भली-भांति ज्ञान हो जाता है। इस कारण किंवदंतियों को सर्वथा कपोल-कल्पना समझ कर उनका त्याग करना ऐतिहासिक सामग्री को नाश करना है। हिंदी-साहित्य के इतिहास मे तो किंवदंतियों को विशेष स्थान प्राप्त है, और जो इतिहास-प्रेमी सभी किंवदंतियो को भ्रम-मूलक समझ कर कल्पित इतिहास गढ़ते हैं, वे शृंखलाबद्ध इतिहास का निर्माण करने में विघ्न उपस्थित करते हैं।

अन्य प्रसिद्ध कवियों के समान नवाब खानखाना अब्दुर्रहीम (उपनाम रहीम) के विषय में भी अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हैं। हिंदी-संसार में इन रहीम-विषयक किंवदंतियों का आदर भी प्रत्येक हिंदी-प्रेमी करता है। गो० तुलसीदासजी, रीवाँनरेश, राणा अमरसिंह आदि अनेक समकालीन पुरुषों से संबंधित रहीम-विषयक जनश्रुतियाँ तो सभी को भली-भाँति विदित ही हैं। इन प्रचलित जनश्रुतियों के अतिरिक्त हमें कुछ और भी मालूम हुई हैं। पहिली ५ कथाएँ हमें 'चकत्ता-वंश-परंपरा' नामक एक अज्ञात लेखक की पुस्तक से प्राप्त हुई हैं। यह पुस्तक संभवतः जयपुर-नरेश सवाई माधोसिंह के समय में सं० १८२५ वि० के लगभग रची गई है। इस ग्रंथ में इन महाराज की प्रशंसा भी की गई है, और मुगल-राज्य-संबंधी (चकत्ता-वंश) मनोरंजक बातों का वर्णन भी इसी समय तक

है। संवत् १८२५ वि० में हिंदी-गद्य की क्या अवस्था थी, यह प्रकट करने के हेतु इन दंतकथाओं को यथावत् उद्धृत करते हैं। कोष्टक में दिए हुए शब्द सुगमता-पूर्वक भाव-प्रदर्शन करने के हेतु हमारी ओर से दिए गए हैं।

(१)

खानखाना की पालकी में काहू[1] ने पचसेरी[2] डाली। ता प्रमान[3] खानखाना ने (उलटा उसे) सोना दिवाय दिया और सीख दई। तब काहू ने अरज करी जो याने (तो) गरदन मारने के काम किए, (उसे) सोना क्यों दिवाय दिया? नवाब (ने) कही—याने हम कूँपारस जानि परीक्षा निमित्त पचसेरी पालकी में राखी है।

(२)

एक दरिद्री (ने) खानखानाजू की ड्योढ़ी[4] (पर) जाय कही—मैं नवाब का साढ़ू हूँ। तब चोबदार (ने) नवाब सूँ खबरि करी। सो नवाब (ने) दरिद्री कूँ बुलाया (और) सिष्टाचार करि बहोत स्वागत करो। तब काहू ने (नवाब से) पूँछी—यह दरिद्री आपका साढ़ू किस तरह है? नवाब (ने) कही—संपत्ति विपत्ति दो भैन[5] हैं। सो संपत्ति हमारे घर में है और विपत्ति याके घर में है तासूँ हमारा साढ़ू है।

(३)

खानखाना (ने) चोबदार सूँ कही—रसायनी ज्ञानी ब्राह्मण हो यगा जिनोकूं आने मति देऊ। जो रसायनी ब्राह्मण हो गया सो हमारे घर (ही) क्यों आवेगा। और (जो) आवता है सो (ब्राह्मण) दग़ावाज है।

---

१. किसी। २. पाँच सेर का लोहे का बाट; पसेरी। ३. उसके बोझ के बराबर। ४. दरवाजा, पोली। ५. बहिन, भगिनी।

(४)

एक सिद्ध मुख में गोली ले आकास (मार्ग से) जाते हुये। सो (सिद्ध) ख़ानख़ाना के बाग़ में उतरि सोय गया। सो (नींद में) गोली मुख में ते गिर परी। तब खानखाना (ने) उठाय लाई। अतीत[1] जागि (कर) हेरन[2] लागा। तब ख़ानखाना (ने) गोली सोंपि दई। तब वह गुजराति (लौट) गया और गुरु सों मिलि (कर) कही—येक गोली जाती रही (और फिर) ताके सर्व समाचार कहे। सो गुरु ने चेला पठाय दिल्ली कूँअर रस कूप का (?) की सीसी ख़ानख़ानाजी (के) पास भेजी। ताकी एक बूँद ते लाखन मण[3] तामा[4] सोना हो जाय। सो खानख़ानाजू दरयाव[5] (के) पासि चेला सहत[6] गए। सो सीसी जमुना में डारि दई और कही-मोकूँ (तो) ऐसा मारग बतावौ जाते संसार ते छूट जावों। दोलत तो पहिले ही बहुत है।

(५)

ख़ानखाना कहता—आदमी बिना दग़ाबाज़ी काम का नहीं। पर दगाबाज़ी की ढाल करना जोग्य, तरवार करना नहीं[7]।

(६)

भक्तमाल के आधार पर रहीम-विपयक जो कथा आज कल की प्रकाशित पुस्तकों में मिलती है, उसमें भी थोड़ा-बहुत अंतर पाया जाता है। इस कारण सं० १८१४[8] के लगभग रचित वैष्णवदास कृत 'भक्तमाला' की प्राचीन प्रति से यह कथा भी

---

१. अतिथि, यात्री। २. खोजना। ३. मन। ४. ताँवा, ताम्र। ५. नदी, यमुना। ६. सहित, साथ। ७. विश्वासघात से अपनी रक्षा करनी चाहिये, न कि दूसरे का अहित। ८. यह संवत् 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का विवरण' के आधार पर दिया गया है।

यहाँ उद्धृत की जाती है। भक्तमाल को नाभादासजी ने लिखा था और उनके शिष्य प्रियादासजी ने उस पर टीका की थी। वैष्णवदासजी इन्हीं प्रियादासजी के पुत्र थे, और उन्होंने 'भक्तमाल प्रसंगा' नाम से भक्तमाल पर प्रियादासी टीका पर टीका रची है।

एक रहीम नाम पठान विलायति में रहे। ताने सुनी (कि) नाथजी[१] बहुत खूबसूरिति हैं। तब वाने (मन में) कही—खूबी बिना मिठाई कौन काम की। यह विचारि फेरि (दर्शन की) चाहि भाई। रात दिना चल्योई आयो। जब (रहीम) दरवाजे पै आयो तब (चोबदार ने) रोक्यो (और कहा) भीतर मत जाय। तब (रहीम) बगदि[२] के बोल्यो—यह साहब[३] अरु यह बेसुरी[४]। चाह[५] क्यों दई (और जो) चाह दई तो जामा[६] मैलो क्यों दयो? (और यह दोहा कहा)—

> हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
> खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर॥

तब ऐसे कहि के (रहीम) पर्वत[७] के नीचे जाय बैठे। तब श्रीगुसाईजी ने (यह सब) सुनि के थार को प्रसाद लै के रहीम पै गए। तब वाने (रहीम ने) कही बाबा तुम यहाँ क्यों आवते हो। तुम सों हमारा क्या काम है। मैं तो जिसन बुलाया हूँ[९] जिसे ही कहता हूँ। तब नाथजी (स्वयं) थार

---

१. वल्लभकुल संप्रदाय के आराध्यदेव जिनका मन्दिर अब उदयपुर राज्य में है, पहले गोवर्धन में था।

२. उलट कर। ३. साहिबी, बड़प्पन। ४. बेगहूरी, गँवारपन। ५. इच्छा, दर्शन-लालसा। ६. देह, नीच जाति में क्यों जन्म दिया। ७. गोवर्धन पर्वत। ८. गो० श्रीविट्ठलनाथजी। ९. जिसने मुझे बुलाया है।

लाए। (परन्तु) तब वाने (रहीम ने) पीठ फेरि लई। तापे (यह) दोहा (कह्यो)—

खिंचे चढत ढीले ढरत, अहो कौन यह प्रीति।
आजि कालि मोहन गही, वंस दिए की रीति॥

यह विचारि के (रहीम ने) पीठ दई। तब (श्रीनाथजी) थारि धरि के चले गए। तब यह पीछे पछतायो "मैंने बुरी करी। वाकों (श्रीनाथजी को) तो मोसे बहुत आसिक हैं मोको ऐसो मासूक कहाँ। फेरि कहा ह्वै है।" तब विचार (किया कि) अब (तो) दिन कटई करे (केवल) बाकी बातन सों।

तापे (केवल बातों से कैसे दिन कटे) दृष्टांत—

एक बैरागी जै[1] आयो। दूसरे (वैरागी) पूछें—तेने कहा खायो न्योते में। वाने सब बताय दिया पूरी, बूरो, लडुवा अरु दही। तब वह बोल्यो फेरि कहो (उसने) फेरि पाठ कीनो। तब वह (फिर) बोल्यो–'फेरि कहो'। (बैरागी ने) कही रे बातन सूँ तो पेट नाहिं भरे। तब वह बोल्यो—दिन तो कटे कहै[2]।

सो अब वह दिन कटई करे है—

(श्रीनाथजी के) आइबे[3] की छवि कहे हैं—

छवि आवन मोहन लाल की।
काछे काछनि कलित मुरलि कर पीत पिछौरी साल की।
वक तिलक केसर को कीने, दुति मानो विधु बाल की॥

---

१. भोजन करना। २. बातो से दिन किस तरह कट सकता है, इसको व्यक्त करने के हेतु प्रसंगवश यह दृष्टांत दिया है। भक्तमाल-प्रसंग मे इसी प्रकार की टीका है। ३. प्रकट होकर दर्शन देने की छवि का वर्णन रहीम ने निम्नलिखित पदो में किया है।

बिसरत नाहि सखी मो मन ते, चितवनि नैन बिसाल की ।
नीकी हँसनि अधर सधरनि की, छबि लीनी सुमन गुलाल की ॥
जल सो डारि दियो पुरइनि पै, डोलनि मुकता माल की ।
यह सरूप निरखै सोई जाने, या रहीम के हाल की ॥

कमल दल नैननि की उनमानि ।
बिसरत नाहि मदनमोहन की, मंद-मंद मुसकानि ॥
दसननि की दुति चपला हू ते, चारु चपल चमकानि ।
बसुधा की बस करी मधुरता, सुधापगी बतरानि ॥
चढ़ी रहै चित उर बिसाल की, मुक्त माल लहरानि ।
नृत्य समय पीताम्बर की वह, फहरि फहरि-फहरानि ॥
अनुदित श्रीवृन्दावन बृज में, आवन जावन जानि ।
छबि रहीम चित तें न टरति है, सकल श्याम की बानि ॥

× × × × ×

जिहि रहीम तन मन दियो, कियो हिये बिच भौन ।
तासो दुख सुख कहन की, रही कथा अब कौन ॥
मोहन छबि नैननि बसी, पर छबि कहाँ समाय ।
भरी सहाय रहीम लखि, पथिक आप फिर जाय ॥

---

(७)

रहीम की दानशीलता की प्रशंसा में गंग ने निम्नलिखित दोहा लिख भेजा:—

सीखे कहां नवाबजू, ऐसी देनी दैन ।
ज्यों ज्यों कर ऊँचो करो, त्यो त्यो नीचे नैन ॥

रहीम ने अत्यन्त विनय और निरभिमानता दिखा कर उत्तर दिया:—

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पर धरै, याते नीचे नैन॥

रहीम ने एक छप्पय पर प्रसन्न होकर गंग को छत्तीस लाख रुपये दिये थे। ऐसा लेख मिलता है।

(८)

एक दिन कोई दरिद्र ब्राह्मण भूख प्यास का मारा मुसलमानों को कोस रहा था। रहीम ने उसकी बातें सुन लीं और कहा कि लोगों पर दया रखो। ब्राह्मण यह बात सुन कर प्रसन्न हो गया। और तो उसके पास कुछ था नहीं, अपनी फटी पुरानी पगड़ी उतार कर रहीम को दे दी। रहीम ने उसे सहर्ष ले ली और अपने सिर पर बाँध ली और ब्राह्मण को बहुत सा रुपया देकर बिदा किया।

(९)

एक साहूकार की स्त्री रहीम पर मोहित होगई और उसको बुला भेजा। रहीम ने बुलाने का कारण पूछा तो स्त्री ने कहा कि अपना सा बेटा दो। रहीम उसका भाव समझ गये और बोले कि मेरा सा तो मैं ही हूँ और अब मैं तेरा बेटा हूँ। यह कह कर रहीम ने अपना सिर उसको गोद में रख दिया। स्त्री लज्जित हो गई और परस्पर माँ-बेटे का सा संबंध हो गया।

(१०)

एक दिन मुल्ला नजीरी ने रहीम से कहा कि मैंने एक लाख रुपये का ढेर नहीं देखा। रहीम की आज्ञा से एक लाख का ढेर लगाया गया। मुल्ला ने कहा—"खुदा का शुक्र है कि नवाब की बदौलत इतना रुपया देखा"। रहीम ने कहा—"सब मुल्ला को दे दो कि फिर खुदा का शुक्र करे।"

कई बार रहीम ने सोने से अपना तुलादान कर कवियों को अशर्फियाँ बटवाई थी।

(११)

खानखाना और गोस्वामी तुलसीदास जी में परस्पर बड़ा स्नेह था। एक निर्धन ब्राह्मण को अपनी कन्या के विवाह की बड़ी चिन्ता थी। पास एक पैसा भी नहीं था। गोस्वामीजी के पास जाकर वह अपना दुःख सुनाने लगा। तुलसीदासजी ने निम्नलिखित पंक्ति लिख दी और खानखाना के पास उस ब्राह्मण के हाथ भेज दी :—

सुरतिय, नरतिय नागतिय, सब चाहत अस होय।

खानखाना ने ब्राह्मण को बहुत धन दिया और गोस्वामी जी को उसी के हाथ दोहे की पूर्तिकर उत्तर भेजा—

गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

खानखाना की इस मधुर मीठी हाजिर जवाबी में यह भी विशेषता है कि तुलसीदासजी की माता का नाम हुलसी था।

(१२)

खानखाना के मुन्शी ने अपने विवाह के लिए कुछ दिनों की छुट्टी ली। छुट्टी बीत गई पर मुन्शीजी लौट कर न आये। आये तो बहुत दिनों बाद। घर से चलते समय बड़े चिन्तित थे कि मालिक क्या कहेगा। स्त्री ने चिन्ता का कारण पूछा तो मुन्शीजी ने कह सुनाया। स्त्री चतुर थी। एक पद लिख-कर पति को दे दिया कि खानखाना को दे दे। वह निम्न-लिखित बरवे था:—

प्रेम प्रीति के बिरवा, चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजो, मुरझि न जाय॥

खानखाना ने जब यह पढ़ा तो क्रुद्ध होना तो अलग रहा इस पद पर रीझ गये और बरवा छन्द में स्वयं कविता करनी ठानी। इसी का फल-स्वरूप उनका बरवे नायकाभेद और बरवा छन्द की अन्य कविताएँ हैं।

(१३)

ख़ानख़ाना अपनी पदवी तथा जागीर बादशाह को अप्रसन्न कर खो बैठे थे। बादशाह फिर प्रसन्न हुये और पदवी जागीर पुनः देते हुए एक लाख रुपया और भी रहीम को दिया। तब ख़ानख़ाना ने अपनी अँगूठी में यह शेर खुदवा लिया था—

मरा लुत्फे जहाँगीरी जे ताई दाते रब्बानी।
दो बारः जिन्दगी दादः दो बारः ख़ानख़ानानी॥

अर्थात् जहाँगीर की मेहरबानी ने ख़ुदा की मदद से मुझको जिन्दगी और खानख़ाना की पदवी दोबारा दी है।

(१४)

पं० जगन्नाथ त्रिशूली ने एक दिन रहीम को यह श्लोक सुनाया—

प्राप्य चलानधिकारान्, शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु।
नापकृत नोपकृत न सत्कृत किं कृतं तेन॥

अर्थात् जिसने राजा का अधिकार पाकर शत्रुओं का अपकार, मित्रों का उपकार तथा बंधुवर्गों का सत्कार न किया तो उसने क्या किया?

खानखाना ने हँसकर उत्तर दिया—

प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु।
नोपकृत नोपकृतं नोपकृत किं कृतं तेन॥

जिसने राजा का अधिकार पाकर शत्रु, मित्र तथा बन्धुवर्गों का उपकार नहीं किया तो उसने क्या किया?

ख़ानख़ाना के उदार हृदय का कैसा अच्छा भाव-प्रदर्शन है !

(१५)

याचकों को कोरा जवाब देना रहीम को नहीं भाता था। अपनी अवस्था एकसी रहने न पाई। जागीर छिन जाने पर पास कुछ रहा नहीं था। याचक तो फिर भी नहीं मानते थे। एक ने आकर घेरा तो रहीम ने उसे रीवाँ-नरेश के पास सिफारिश में एक दोहा लिखकर भेज दिया। याचक की सहायता कराने के लिये निस्संकोच भाव से स्वयं दीन भिखारी बन गये। दोहा लिखा—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जापर विपदा पड़त है, सो आवत यहि देस॥

रीवां-नरेश ने ऐसी सिफारिश पर एक लाख रुपया दिया। दोहे का मूल्य भी तो इससे कम न था !

(१६)

चित्तौड़ के महाराणा अमरसिंह जहाँगीर से युद्ध में परास्त होकर जंगलों में घूमते फिरते थे। एक दिन घबरा कर रहीम को उन्होंने निम्नलिखित दोहे भेजे—

हाड़ा कूरम राव बड़, गोखाँ जोख करंत।
कहियो खानखाना ने, वनचर हुआ फिरत॥
तुंबरा-सु दिल्ली गई, राठौड़ा कनवज्ज।
राण पय पै खान ने, वह दिन दीसे अज्ज॥

ख़ानख़ाना ने उत्साह-वर्द्धन के लिये उत्तर लिख भेजा—

धर रहसी रहसी धरम, खिस जासे खुरसाण।
अमर विसंभर ऊपरे, नहचौ राखो राण॥

हुआ भी ऐसा ही।

(१७)

महाकवि केशवदास ने आमेर-नरेश मानसिह को अपनी रचित जहाँगीरचंद्रिका में अकबर के दरबार का सिंह बताया है, यथा—

साहिबी के रखवार शोभिजै सभा मे दोऊ।
खानखाना मानसिह सिह अकबर के॥

इन्हीं मानसिह की वीरता, दक्षता तथा राजनीति-कौशल से चकित होकर रहिम ने उनकी अनन्वयालंकारपूर्ण इस प्रकार प्रशंसा की है—

हरि दश हैं हर एकदग, रवि द्वादश विधि आन।
तोसो तुही जहान में, मेरु महीपत मान॥

(१८)

रहीम की गो० तुलसीदासजी से घनिष्टता थी। कहा जाता है कि इस घनिष्टता के कारण तथा रहीम के प्रति अपनी श्रद्धा दिखाने के हेतु गोस्वामीजी ने स्वरचित दोहावली का अन्तिम दोहा रहीम रचित उद्धृत किया है। वह दोहा इस प्रकार है:—

मनि मानिक महँगे किये, सँहगे तृन जल नाज।
रहिमन याते कहत है, राम गरीबनिवाज॥

बा० बेनीमाधवदास-कृत गुसाईं-चरित के आधार पर यह भी निश्चित है कि रहीम ने कुछ बरवे तुलसीदासजी के पास भेजकर 'बरवे रामायण' लिखवाई।

(१९)

तानसेन ने कान्हरा राग की धुन पर एक नवीन राग को अकबर के दरबार में गा-गा कर उसे दरबारी (कान्हरा) नाम से प्रसिद्ध किया। एक दिन उन्होंने इसी राग में सूरदासजी का वह पद गाया:—

जसुदा बार बार यो भाखे ।

है कोउ ब्रज मे हितू हमारो, चलत गुपालहि राखे ।

अकबर ने इसका अर्थ पूँछा, तब तानसेन ने कहा—"यशोदा बारम्बार यों कहती है कि ब्रज में हमारा ऐसा कौन हितू है जो गोपाल को मथुरा जाने से रोके ।"

शेख़ फ़ैजी ने कहा—"नहीं । 'वारबार' का अर्थ रोना है । अर्थात् यशुदा रो-रो कर यह कहती है..."

बीरबल ने कहा—"बार बार का अर्थ द्वार द्वार है । यशोदा द्वार-द्वार यह कहती फिरती है..."

एक ज्योतिषी ने कहा—"बार का अर्थ दिन है । यशोदा प्रत्येक दिन यह कहती रहती है..."

अंत में रहीम ने कहा—"वार वार का अर्थ वाल वाल अर्थात् रोम रोम है । यशोदा का रोम रोम यह कहता है..."

अन्त में अकबर ने कहा कि सब ने बार बार के अर्थ भिन्न-भिन्न किये, इसका क्या कारण? खानख़ाना ने विनयपूर्वक कहा—"इतने अर्थ एक शब्द के हो सकें यह कवि की चतुराई है । प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी दशा तथा चित्तवृत्ति के अनुसार अर्थ करता है । वास्तविक अर्थ वही है जो मैंने किया है । तानसेन गवैया है, इसको आपके दरबार में दरबारी बार बार गानी पड़ती है और ध्रुव अन्तरा आदि बार बार अलापना पड़ता है, इस कारण इन्हों ने बार बार का अर्थ अनेक बार किया । फैजी शायर सिवाय रोने-धोने के और क्या जाने । बीरबल ब्राह्मण ठहरे । घर घर घूमते हैं । इस कारण इन्होंने द्वार द्वार अर्थ किया । रहा ज्योतिषी सो सिवाय तिथि बार नक्षत्र के और क्या जाने ।"

रहीम के संबंध में हिन्दी कवियों की उक्तियाँ

किंवदन्तियों का आधार सत्य हो अथवा न हो, परन्तु उनका एकत्र कर प्रकाशित करना उचित ही है। इसी प्रकार कवियों ने जो रहीम की प्रशंसा में कविता रची है, अथवा प्रसगवश उनको रचने का अवसर मिला, उसका भी संग्रह यहाँ कर दिया जाता है। कोई-कोई प्रसंग भी जानने योग्य है। इनके एकत्र करने में परिश्रम अधिक करना पड़ा है। पाठकों को रुचिकर हो तो अच्छा है। बहुत से कवि रहीम के आश्रित वा उनसे सम्मान पाते थे। इसी कारण उनकी प्रशंसा में इतनी कविता रची गई है। रहीम की लोक-प्रियता, दानशीलता और कविता-प्रेम का सच्चा उदाहरण कवियों की उक्तियों से भली प्रकार विदित होता है—

१. केशवदास

महाकवि केशवदास का रहीम से घनिष्ट परिचय था। उन्होंने सं० १६६९ में "जहाँगीर-चंद्रिका" नामक एक पुस्तक रची है। यह पुस्तक रहीम के पुत्र एलच बहादुर के लिये रची गई थी। इस पुस्तक में अधिकांश में जहाँगीर के दरबार का वर्णन है। प्रसंग-वश उसमें रहीम के विषय में भी निम्न-लिखित छंद है—

बइरम खाँ पुत्र सो हुमायूँ को साहि सिंधु,
सातो सिंधु पार कीनी कीर्ति करबर की।
शील को सुमेर, सुद्ध साँच को समुद्र, रण-
रुद्रगति "केसौदास" पाई हरिहर की॥
पावक प्रताप जाहि जारि-जारी प्रक...
......साहिबी समूल मूल गर की।

प्रेम परिपूरन पियूष सींचि कल्पवेलि,
पाल लीनी पातसाही साहि अकबर की ॥
ताको पुत्र प्रसिद्ध महि, सब खानन को खान।
भयो खानखाना प्रकट, जहाँगीर तनु-त्रान ॥
साहिजू की साहिबी को रक्षक अनंत गति,
कीनो एक भगवत हनुवंत वीर सों।
जाको जस "केसौदास" भूतल के आस पास,
सोहत छबीलो क्षीर-सागर के क्षीर सों ॥
अमित उदार अति पावन विचारि चारु,
जहाँ-तहाँ आदरियो गंगाजी के नीर सों।
खलन के घालिवे को खलक के पालिवे को,
खानखाना एक रामचंद्रजू के तीर सों ॥

इसी पुस्तक में महाकवि केशवदास ने 'उद्यम' तथा 'भाग्य' की परस्पर वार्तालाप में सभा के सभी सरदारों का वर्णन किया है। 'उद्यम' तथा 'भाग्य' के रहीम-संबंधी प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं—

उद्यम—
सभा सरोवर हंस से, शोभित देव समान।
वे दोऊ नृप कौन है, कहिए भाग्य प्रमान ॥

भाग्य—
जीते जिन गक्खरी, भिखारी कीने भक्खरी जे,
खानि खुरासानि बाँधि, खरियो पर के।
चोरि मारे गोरिया बराह बोरि वारिधि में,
मृग से बिडारे गुजराती लीने डर के ॥
दक्षिण के दक्ष दीह दती ज्यो विडारे वीर,
"केसौदास" अनायास कीने घर-घर के।
साहिबी के रखवार शोभिजें सभा में दोऊ,
खानखाना मानसिंह सिंह अकबर के ॥

२. जाड़ा

महड्डू शाखा का जाड़ा नाम का एक चारण था। उसका वास्तविक नाम आसकरन था। परन्तु स्थूल शरीर होने के कारण उसको लोग 'जाड़ा' कहा करते थे। उसने रहीम की प्रशंसा में निम्नलिखित चार दोहे कहे हैं—

खानखाना नवाव हो!, मोहिं अचमो एह।
मायो[1] क्रिमि गिरि मेरुमन, साढ़ तिहत्थी[2] देह॥
खानखाना नवाब रे, खाँड़े आग खिवंत[3]।
जलवाला नर प्राजलै[4], तृणवाला जीवंत[5]॥
खानखाना नवाबरी, आदम गीरी[6] धन्न।
मह ठकुराई मेरु-गिरि, मनी न राई मन्न[7]॥
खानखाना नवाबरा, अड़िया भुज ब्रह्मंड[8]।
पूँठे[9] तो है चंडिपुर[10], धार तले नवखड॥

इन दोहों पर प्रसन्न होकर रहीम ने जाड़ा कवि को प्रत्येक दोहे पर एक एक लाख रुपये देना चाहा, परंतु कवि ने विनयपूर्वक भेंट को अस्वीकार कर दिया, और अपने आश्रयदाता महाराणा प्रताप के भाई जगमल को रहीम के द्वारा बादशाह से जहाजपुर का परगना दिलवाया जो परगना पहले मेवाड़ प्रांत का ही एक भाग था।

रहीम ने भी जाड़ा के दोहों का जवाब इस प्रकार दिया था—

---

१. समाया। २. साढ़े तीन हाथ की। ३. तेरे खड्ग से अग्नि की वर्षा होती है। ४. पानीवाले अर्थात् पराक्रमी पुरुप जल जाते है। ५. दांतो मे तृण धारण करनेवाले दीन पुरुष जीवित रहते हैं। ६. उदारता। ७. मेरु गिरि जैसी ठकुराई भी अपने मन मे नही मानी। ८. भुजाओ के बल पर ब्रह्मांड डटा हुआ है। ९. पीठ पर। १० दिल्ली।

घर[1] जड्डी अंवर[2] जडा, जड्डा महड्[3] जोय।
जड्डा नाम अलाहदा[4], और न जड्डा कोय॥

३. मंडन

संवत् १८१२ की लिखी हुई 'जस-कवित्त' की प्रति में मंडन कवि का एक छंद रहीम की प्रशंसा का दिया हुआ है। वह इस प्रकार है—

तेरे गुन खानखाना परत दुनी के कान,
ये तेरे कान गुन आपना धरत हैं।
तूंतो खग्ग खोलि-खोलि खलन पै कर लेत,
लेत यह तोपै कर नेक न डरत हैं॥
"मंडन सु कवि" तू चढ़त नवखडन पै,
यह भुज-दण्ड तेरे चढ़िए रहत हैं।
ओहती अटल खान साहवं तुरक मान,
तेरी या कमान तोसों तेहु सों करत हैं॥

४. प्रसिद्ध

'शिवसिंह-सरोज' में 'प्रसिद्ध' कवि का खानखाना के यहाँ होना लिखा है। उसी पुस्तक में इस कवि का यह छंद भी दिया है—

गाजी खानखाना तेरे धौंसा की धुकार सुनि
सुत तजि, पति तजि, भाजी वैरी-बाल हैं।
कटि लचकत, वार-भार ना सँभारि जात,
परी विकराल जहँ सघन तमाल हैं॥
कवि "परिसिद्ध" तहाँ खगन खिजायो आनि,
जल भरि-भरि लेती दृगन विसाल हैं।

---

१. पृथ्वी, धरा। २. आकाश। ३. कवि की शाखा। ४. ईश्वर।

वेनी खैंचे मोर, सीसफूल को चकोर खैंचे,
मुकता की माल ऐंचि खैंचत मराल हैं ॥

स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी ने भी स्वरचित 'ख़ानख़ाना-नामा' में इसी कवि का एक छंद और दिया है। वह इस प्रकार है—

सात दीप, सात सिंधु थरक-थरक करै,
जाके डर टूटत अखूट गाढ़ राना के।
कपत कुबेर वेर मेरु मरजाद छाँड़ि,
एक-एक रोम झर पडे हनुमाना के ॥
धरनि धसक धस, मुसक धसक गई,
भनत "प्रसिद्ध" खंभ डोले खुरसाना के।
सेस फन फूट-फूट चूर चकचूर भए,
चले पेस खाना जू नवाब खानखाना के ॥

हमारे पुस्तकालय में यह छंद और है—

जलद चरन सचरहि सवर सोहे समत्थ गति।
रुचिर रग उत्तग जग मडहि विचित्र अति ॥
बैराम सुवन नित बकसि वकसि हय देत मगिनन।
करत राग 'परसिद्ध' रोस छडहि न एक छिन ॥
थरहरहिं, पलट्टहिं उच्छलहिं, नचत धावत तुरङ्ग इमि।
खजन जिमि नागरि नैनजिमि, नट जिमि मृग जिमि पवन जिमि ॥

५. गंग

हमारे पुस्तकालय में गंग कवि के कवित्तों का एक अच्छा संग्रह है। उसमें रहीम की प्रशंसा के अनेक कवित्त हैं। गंग ने वीर-रसात्मक छंद विशेषत: रहीम के लिये ही लिखे हैं।

तृतीय त्रैवार्षिक खोज की रिपोर्ट में गंग कवि कृत 'खान-

[illegible]मा 'क[illegible]त्त' नामक ग्रंथ की सूचना दी है। परन्तु वह हमारे खने में नहीं आया। हमारे पास जो छंद हैं, वे यहाँ दिये जाते हैं।

बाँधिबे कौं अंजलि, बिलोकिबे कौ काल ढिग,
राखिबे कौ पास जिय, मारिबे कौ रोस है।
जारिबे कौं तन मन, भरिबे कौ हियो आँखें,
धरिबे कौ पग मग, गनिबे कौ कोस है॥
खाइबे कौ सौंहे, भौंहे चढ़िबे-उतारिबे कौ,
सुनिबे कौ प्रानघात किए अपसोस है।
बैरम के खानखाना तेरे डर बैरी-बधू,
लीबे कौ उसास मुख दीबे ही कौ दोस है॥

× × ×

नवल नबाब खानखाना जू तिहारी त्रास,
भागे देस-पति धुनि सुनत निसान की।
"गंग" कहै तिनहुँ की रानी रजधानी छाँड़ि,
फिरै बिललानी सुधि भूली खान-पान की॥
तेऊ मिली करिन हरिन मृग बानरनि,
तिनहूँ की भली भई रच्छा तहाँ प्रान की।
सची जानी करिन, भवानी जानी केहरनि,
मृगन कलानिधि, कपिन जानी जानकी॥

× × ×

हहर हवेली सुनि सटक समरकंदी,
धीर ना धरत धुनि सुनत निसाना की।
मछम को ठाठ ठस्यो प्रलय सों पलट्यो "गंग",
खुरासान अस्पहान लगे एक आना की॥
जीवन उबीठे बीठे मीठे-मीठे महबूबा,
हिए भर न हेरियत अवट वहाना की।

तौसेखाने, फीलखाने, खजाने, हुरमखाने,
खाने खाने खबर नवाब खानखाना की ॥

× × ×

नवल नवाव खानखानाजी रिसाने रन,
कीने अरि जेर समसेर सर सरजे।
मांस के पहाड़ सम सानु करि राखे शत्रु,
कीने घमसान भूमि आसमान लरजे॥
सोणित की धार सों छुअत चन्द्रमा-सों धार,
भारी भयो भेद रुद्रन को हाहा बरजे।
न्यारो बोल वोलत कपाल, मुंडमाल न्यारी,
न्यारो गजराज, न्यारो मृगराज गरजे॥

× × ×

प्रबल प्रचड वली बैरम के खानखाना,
तेरी धाक दीपक दिसान दह दहकी।
कहै कवि 'गंग' तहाँ भारी सूर-वीरिन के,
उमड़ि अखंड दल प्रलै पौन लहकी॥
मच्यो घमसान, तहाँ तोप तीर बान चले,
मंडि बलवान किरवान कोप गहकी।
तुड काटि, मुड काटि, जोसन जिरह काटि,
नीमा जामा जीन काटि जिमी आनि ठहकी॥

× × ×

चकित भँवर रहि गयो, गमन नहिं करत कमल बन।
अहिफनि-मनि नहि लेत, तेज नहिं बहत पवन घन॥
हंस मानसर तज्यो, चक्क चक्की न मिले अति।
बहु सुंदरि पद्मिनी, पुरुष न चहे न करें रति॥

खलभलित सेस कबि 'गग' भनि, अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानानखान बैरम सुवन, जिदिन कोप करि तॅग कस्यो॥[1]

× × ×

कश्यप के तरनि औ तरनि के करन जैसे,
उदधि के इदु जैसे, भए यों जिजाना के।
दशरथ के राम और श्याम के समर जैसे,
ईश के गनेश औ कमलपत्र आना के।
सिंधु के ज्यो सुरतरु, पवन के ज्यो हनुमान,
चद के ज्यों बुध अनिरुद्ध सिह वाना के।
तैसई सपूत खान बैरम के खानखाना,
वैसेई दाराबखा[2] सपूत खानखाना के।

× × ×

नवल नवाब खानखानाजू तिहारे डर,
परी है खलक खैल भैल जहू तहू जू।
राजन की रजधानी डोली फिरैं बन बन,
नैठन की दैठे बैठे भरे वेटी बहू जू॥
चहूं गिरि राहे परी समुद्र अथाहे अब,
कहे कवि 'गग' चक्र बल्ली ओर चहू जू।
भूमि चली शेप धरि, शेप चल्यो कच्छ धरि,
कच्छ चल्यो कौल धरि, कौल चल्यौ कहूं जू।

× × ×

ठठा मार्यो खानखाना दच्छन अजीम कोका,
इसकखा मारि मारे कसमीर ठौर गे।

---

१. इस छप्पय पर रहीम ने गंग को छत्तीस लाख रुपया भेंट किया था। २. दाराबखा रहीम का पुत्र था और दक्षिण की लड़ाइयों साथ रहा था।

साहि के हरामखोर मारे साह कुली खान,
कहाँ लौ गनाऊँ गुन उमरावन और के ॥
रुस्तम नवाब मारि बालाघाट वार कियो,
फाजिल फिरगी मारे टापनि सरोर के।
बास्ती को काम छह हजार असवार जोरे,
जैनखा जुनारदार[1] मारे इकनौर के ॥

× × ×

... ... वैन तद्वैन अदच्छन।
नगनि जात नागिनि पनाग नायक उरिहग्गन।
इक्क वरनि सरवरनि तीर तरवारिन पत पर।
हार्द हार्द हा, हूँधि हुलिल गाहे तिलंग नर।
खानानखान बैराम सुवन, जदिन कुप्पि कर खग्ग लिय।
कलमलि सकल दक्खिन मुलक, पट्टन पट्टन पट्ट किय ॥

× × ×

बैरम को खानखाना बिरच्यो बिराने देश,
दक्षिण में फौज मारी खग्ग मुख जो परी।
माते-माते हाथिन के हलका हलक डारे,
मानो महा मारुत झकोर डारी झोपरी।
लोहू के अलेले 'गग' गिरजा गलेलै देत,
चोथ-चोंथ खात गीध चर्व्व मुख चोपरी।
तियनि-समेत प्रेत हाके देत वीर-खेत,
खखल-खखल हँसे खलन की खोपरी।

× × ×

---

१. 'शिवसिंह-सरोज' मे लिखा है कि "इकनौर· जिला इटावा पर जैनखाँ का अत्याचार होने पर गग के पुत्र ने जहाँगीर के पास एक अर्जी भेजी थी", जिसके एक कवित्त का अतिम अंश "जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के" था। परंतु इस कविता से यह बात भ्रामक सिद्ध होती है।

कुकुभ कुभि संकुलहि, गहरि हिय गिरि हिय फत्यव।
दर-दरैर कुब्वेर, वेर जिमि मेरु पलत्यव॥
सरस कमल संपुत्य सूर आथवति पइत्यव।
गिरि गगम्मि तिय गम्म, कठ कामिनिय उचित्यव॥
भनि 'गंग' अदिव्वय दव्यदिय, दव्विय कर दव्विय गयो।
खानानखान बैरम सुवन, जादिन दखल दक्खिन दयो॥

× × ×

राजे भाजे राज छोड़ि, रन छोड़ि राजपूत,
राउति छोडि राउत, रनाई छोड़ि राना जू।
कहे कवि 'गंग' इत समुद्र के चहूँ कूल,
कियो न करे कबूल तिय खसमाना जू॥
पच्छिम पुरतगाल काश्मीर अवताल,
खख्खर को देस वाव्यो भख्खर भगाना जू।
रूम-शाम लोम-सोम, वलक-वदाऊँ सान,
खैल फैल खुरासान खीभे खानखाना जू॥

× × ×

गंग गोंछ मोंछे जमुन, अधरन सरसुती राग।
प्रकट खानखाना भयो, कामद वदन प्रयाग॥

× × ×

घमक निसान सुनि, धमकि तुरान चित,
चमक किरान मुल्तान थहराना जू।
मारु मरदान काम रुके करवान आदि,
मेवार के रानहि दवान आनमाना जू॥
पुर्तगाल पछ माध पलटान उत्तराध,
गुजरात-दस अरु दच्छिन दवाना जू।
अरेवान हवसान हट्टेलान रूम सान,
खेल-भेल खुरासान चढ़े खानखाना जू॥

६. संत

सेर सम सील सम धीरज सुमेर सम,
सेर सम साहेब जमाल सरसाना था।
करन कुवेर कलि कीरति कमाल करि,
ताले बन्द मरद दरदमंद दाना था॥
दरवार दरस-परस दरवेसन कौ,
तालिब-तलब कुल आलम बखाना था।
गाहक गुनी के, सुख चाहक दुनी के बीच,
'संत' कवि दान को खजाना खानखाना था* ॥

७. हरिनाथ

हरिनाथ कवि का भी एक छन्द रहीम की प्रशंसा का मिलता है। यह हरिनाथ कौन हैं, सो ठीक-ठीक पता नहीं चलता। परन्तु यह अनुमान किया जा सकता है कि यह वही हरिनाथ हैं, जिन्होंने बाँधव-नरेश नेजाराम बघेले से एक दोहे पर एक लाख रुपए पाए थे, और आमेर के राजा मानसिंह से दो दोहों पर दो लाख। पर मार्ग में एक नागर-पुत्र को एक दोहे पर जो कुछ मिला, सब दे डाला। यह रहीम के समकालीन थे, और बड़े-बड़े राजा-महाराजा के यहाँ इनकी पहुँच भी थी। इनके पिता महापात्र नरहरि अकबर के दरवार में ही थे। इन कारणों से हमें रहीम की

---

* नयना मति रे रसना निज गुन लीन।
कर तू पिय झिझकारे, भली न कीन॥

इस रहीम-रचित वरवे का भाव लेकर संत कवि ने एक सवैया भी रचा है। (देखो भूमिका पृ० २५-२६)

प्रशंसा करने वाले हरिनाथ नरहरि के पुत्र ही मालूम पड़ते हैं उनका कवित्त इस प्रकार है—

बैरम के तनय खानखानाजू के अनुदिन,
दोउ प्रभु सहज सुभाए ध्यान ध्याए हैं।
कहै 'हरिनाथ' सातो द्वीप कौ दिपति करि,
जोहखड करताल ताल सो बजाए है॥
एतनी भगति दिल्लपति की अधिक देखी,
पूजत नए को भास तातैं भेद पाए हैं।
अरि सिर साजे जहाँगीर के पगन तट,
टूटे फूटे फाटे सिव सीस पै चढ़ाए है॥

८. अलाकुलि कवि

लका लायो लूट किधौं सिंहन को कूट-कूट,
हाथी घोड़े-ऊँट एते पाए ते खजीने है।
'अलाकुली' कवि की कुवेर ते मिताई कीनी,
अनतुले अनमाए नग औ नगीने हैं॥
पाई है तैं खांन लक्ष भई पहिचान भूल,
रह्यो है जहाँ नए समान कहाँ कीने है।
पारस ते पाए किधौ पारा ते कमायो किधौ,
समुद्र हू ते लायो किधौ खानखाना दीने है॥

९. तारा कवि

जोरावर अब जोर रवि-रथ कैसे जोर,
बने जोर देखे दीठि जोरि रहियतु है।
है न को लिवैया ऐसो, है न को दिवैया ऐसो,
दान खानखाना को लहे ते लहियतु है॥

तन-मन डारे बाजी ह्वै तन सँभारे जात,
और अधिकाई कहौ कासो कहियतु है।
पौन की बड़ाई बरनत सब 'तारा कवि'
पूरो न परत याते पौन कहियतु है ॥

१०. मुकुंद *

कमठ-पीठ पर कोल कोल पर फन फनिद फन।
फनपति फन पर पुहुमि पुहुमि पर दिगत दीप गन ॥
सप्त दीप पर दीप एक जबू जग लिख्खिय।
कवि मुकुद तहँ भरतखड उप्परहिं बिसिख्खिय ॥
खानानखान वैरम तनय तिंहि पर तुव भुज कल्पतरु।
जगमगहि खग्ग भुज अग्ग पर, खग्ग अग्ग स्वामित्ति बरु ॥

११. अज्ञात

इसी विषय के कुछ छन्द और मिले हैं; परन्तु इनके रचयिता का नाम नहीं ज्ञात हो सका। भाषा-साम्य से कुछ छंद गंग के प्रतीत होते हैं, परन्तु नाम नहीं है। अज्ञात कवियों के छंद निम्नलिखित हैं—

दक्खिन को जूम खानखानाजू तिहारो सुनि,
होत है अचंभो राजा राय उमराइ के।
एक दिन एक रात और दिन आथए लौ,
आए जो मुकाबिले को गये ना विराइ के ॥
बासर के जूमे ते सुमार ह्वै ह्वै गिरत हैं,
भेदें-भेदे बिवडल ते मारे हैं लराइ के।

---

* माधुरी पौष सवत् १६८४ के आधार पर।

जामनी के जूने सूर सूरज को पैड़ो देखें,
भोर राहगीर दरवाजे ज्यों सराइ के ॥

× × ×

नगर ठठा की रजधानी धूरधानी कीनी,
धरक्यो खँधारी खान पानी ना इलक में ।
छाँड़े हैं तुखार औ बुखार न उपार भरे,
उजवक उजर कै गयो है पलक में ॥
पौरि-पौरि परे सेर ठौर-ठौर पौरि दई,
खानखाना ध्याये ते अवाज है खलक में ।
पिय भाजे तिय छाँड़ि, तिया करे पीउ-पीउ,
बाबा-बाबा बिललात बालक बलक में ॥

× × ×

मदन-रूप-तन तबल वीर बारुन गल गज्जइ ।
बहु सनाह पाखरी द्वार दुंदुभि बहु बज्जइ ॥
बहु साहस उत्थपन फेर थप्पन समर्थ वर ।
सहनसाह सिरछत्र ताहि रक्खन समर्थ नर ॥
खानानखान बैरम-सुवन, चित्तसहर रस रत्तयो ।
धन-मद-जोवन-राज-मद, एकहि मद्दन मत्तयो ॥

× × ×

खानखान ना जाँचियो, जहा दालिद्र न जाय ।
कूप नीर अद्रे बिना, नीली धरा न पाय ॥
खानखान नवाब तैं, वाही खग उल्लाल ।
मुदफर पड़ैं न ऊठियो, जैसे अवा डाल ॥
खानाखान नवाब ते, हत्त लगाए एम ।
मुदफर पड़ैं न ऊठियो, गए जोबसी जेम ॥

खानखाना नवाब हो, तुम धुर खैंचनहार।
सेरा सेती नहि खिचे, इस दरगह का भार ॥

× × ×

काह रे करजदार झगरत वार-वार,
नैक दिल धीर धर जान इतवारी से।
वेहूँ दर हाल माल, लिखले सवाई साल,
देखना विहाल मत जानना भिखारी से ॥
सेवा खानखाना की उमेदवारी दान कीते,
महर महान की सूँ होत धनधारी से।
अब घरी पल माँझ, पहर-द्वै-पहर माँझ,
आज-काल के हैरे··· द्वै हजारी से ॥

× × ×

दिए के हुकुम आगे दिए, रहे जामिनी कै,
देह के कहन राख्यो देह के चहत हैं।
वखत के नाम नाम राखत जिहान माँहि,
धन के सवद धन-धन जे कहत है ॥
खानखानाजू की अब ऐसी वकसीस भई,
वाकी वकसीस अरु वखसीस हत है।
हाथिन के नाम हाथी रहत तवेलन मे,
घोरा दिए घोरा सतरज मे रहत है ॥

× × ×

काहू की सिकारि स्याल लोमन को खेल होत,
काहू की सिकारि मृग मारि सुखमानो है।
-काहू की सिकार साथ सिकरा-सिचान-वान,
काहू की सिकार देखो बारुण वखानो है ॥

खानखाना की सिकार सिंधु पैके वार पार,
छंद-वंद-फंद खट बरन को ठानो है।
अवही सुनोगे मास दोय-तीन-चार माँझ,
कोन ही दिसा को पातशाह बाँध आनो है ॥

× × ×
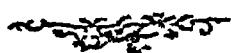
शिवसिंहजी ने लक्ष्मीनारायण नामक एक कवि को रहीम के आश्रित लिखा है; किन्तु हमें उसका कोई छंद प्राप्त नहीं है।

रमई पाठक के पुत्र माथुर (चतुर्वेदी) कुलोत्पन्न बाण कवि ने 'कलि चरित्र' नामक पुस्तक रहीम की आज्ञा से लिखी है। जैसा इस छंद से स्पष्ट है।

संवत सोरह से चोहतरि, चैत्र चंद्र उजियारि।
आयसु पाय खानखाना को, तव कविता अनुसारि ॥

रहीम के पुत्र एलचबहादुर की भी प्रशंसा में 'अभिमन्यु' कवि ने एक छंद रचा है। उसे भी यहाँ दिया जाता है:—

जैसे मृगराज के छौना गजराज पै,
छोटे-छोटे धावन करत आय घाव है।
तैसे लरिकाई ही ते एलचबहादुर ने,
भारी फौज मारी मानों अंगद को पाव है ॥
कहे 'अभिमन्यु' कुल दच्छनि तैं जेर करी,
और कोन देश जाय मूछों देत ताव है।
दादे ते सरस बाप, बाप ते सरस आप,
महावली वैरम के वंस को सुभाव है ॥

संपादन-सामग्री

१. रहिमनविलास–दोहों पर बा० राधाकृष्णदास रचित कुण्डलियाँ।
२. रहिमनविलास–सं० बा० व्रजरत्नदास।
३. रहिमन रत्नाकर–सं० पं० उमरावसिंह त्रिपाठी।
४. रहीम–सं० पंडित रामनरेश त्रिपाठी।
५. रहीम-कवितावली–सं० पं० सुरेन्द्रनाथ तिवारी।
६. रहिमन-चंद्रिका–सं० श्रीरामनाथलाल 'सुमन'।
७. बरवे नायिकाभेद–सं० पंडित नकछेदी तिवारी।
८. रहिमन शतक–सं० पंडित सूर्य्यनारायण दीक्षित।
९. रहिमनशतक–सं० लाला भगवानदीन।
१०. रहिमन शतक (दो भाग)–प्रका० बंबई भूषण यंत्रालय, मथुरा।
११. रहिमन शतक–प्रका० ज्ञान भास्कर प्रेस, बाराबंकी।
१२. रहिमन शतक–प्रका० शारदा प्रेस, कानपुर।
१३. खेट कौतुकम्–प्रका० वेंकटेश्वर प्रेस।
१४. खानखानानामा–ले० मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ।
१५. बरवे नायिकाभेद–असनी से प्राप्त पं० कृष्णविहारी मिश्र की प्रति (हस्तलिखित)
१६. कविता-कौमुदी–सं० पंडित रामनरेश त्रिपाठी।
१७. मिश्रबंधु विनोद–मिश्रबंधु।
१८. भक्तमाल-प्रियादासजी की टीका (हस्तलिखित)।
१९. भक्तमाल-प्रसंग–वैष्णवदास (हस्तलिखित)।

२०. दोहासारसंग्रह–(हस्तलिखित) अनुमानतः दाराशाह द्वारा संग्रहीत ।
२१. गुण गंजनामा– (,,)
२२. प्रबोध रससुधासागर–नवीन (हस्तलिखित) ।
२३. रतनहज़ारा-रसनिधि ।
२४. रहीमकृत बरवे नायिकाभेद–काशी नरेश की प्रति (हस्तलिखित)
२५. शिवसिंह-सरोज–शिवसिंह सेंगर ।
२६. तुलसी-ग्रन्थावली–प्रका० ना० प्र० सभा ।
२७. मतिराम-ग्रन्थावली–सं० पं० कृष्णविहारी मिश्र ।
२८. कबीर-वचनावली–मनोरंजन पुस्तकमाला ।
२९. वृन्द-सतसई ।
३०. सरस्वती–फ़रवरी १९२६
३१. माधुरी–वर्ष ३ खंड २ संख्या २
३२. रहीम और मतिराम–श्रीयुक्त निर्मल (मनोरमा, मई १९२५)
३३. सम्मेलन-पत्रिका–भाग १० अंक १ तथा भाग १२ अंक १, २
३४. चकत्ता वंश की परंपरा–(हस्तलिखित)
३५. जस कवित्त– (,,)

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक पुस्तकें तथा रहीम के समकालीन कवियों के हस्तलिखित ग्रन्थ ।

इन पुस्तकों के लेखकों तथा प्रकाशकों के प्रति संपादक हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करता है ।

रहीम-रत्नावली

दोहावली

अच्युत-चरन-तरंगिनी, शिव - सिर-मालति-माल ।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव-भाल ॥ १ ॥
अधम बचन ते को फल्यो, बैठि ताड़ की छाँह ।
रहिमन काम न आय है, ये नीरस जग माँह ॥ २ ॥
अनकीन्ही बातें करै, सोवत जागै जोय * ।
ताहि सिखाय जगायबो, रहिमन उचित न होय ॥ ३ ॥
अनुचित उचित रहीम लघु, करहि बड़न के जोर ।
ज्यों ससि के संयोग ते, पचवत आगि चकोर ॥ ४ ॥
अनुचित बचन न मानिए, जदपि गुरायसु गाढ़ि ।
है रहीम रघुनाथ ते, सुजस भरत को बाढ़ि ॥ ५ ॥
अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम ।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम ॥ ६ ॥
अमरबेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि ।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिए काहि ॥ ७ ॥
अमृत ऐसे बचन में, रहिमन रिस की गाँस ।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥ ८ ॥

---

* पाठा —जानि अनीतिहि जो करै, जागत ही रहि सोइ ।

अरज गरज मानैं नहीं, रहिमन ए जन चारि ।
रिनिया, राजा, माँगता, काम-आतुरी नारि ॥ ९ ॥

असमय परे रहीम कहि, माँगि जात तजि लाज ।
ज्यों लछमन माँगन गए, पारासर के नाज ॥१०॥

आदर घटे नरेस ढिग, बसे रहे कछु नाहि ।
जो रहीम कोटिन मिले, धिक जीवन जग माँहि ॥११॥

आप न काहू काम के, डार पात फल फूल* ।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़† बबूल ॥१२॥

आवत काज रहीम कहि, गाढ़े बंधु-सनेह ।
जीरन होत न पेड़ ज्यों, थामे बरै बरेह ॥१३॥

उरग, तुरँग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथिआर ।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगै न बार ॥१४॥

ऊगत जाही किरन सों, अथवत ताही काँति ।
त्यों रहीम सुख दुख सबै, बढ़त एक ही भाँति ॥१५॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।
रहिमन मूलहि सींचिबो, फूलहि फलहि अघाय ॥१६॥

ए रहीम दर दर फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं ।
यारो यारी छोड़िए, वे रहीम अब नाहिं ॥१७॥

ओछो काम बड़े करैं, तो न बड़ाई होय‡ ।
ज्यों रहीम हनुमन्त कों, गिरधर कहे न कोय ॥१८॥

अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय ।
जिन आँखिन सों हरि लख्यो, रहिमन बलि बलि जाय ॥१९॥

---

* पाठा० मूल † पाठा० कूर ।

‡ पाठा० थोरो किये बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय ।

अंड न बौड़ रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान।
हस्ती-ढक्का, कुल्हड़िन, सहैं ते तरुवर आन ॥२०॥

अंतर दाव लगी रहै, धुँआ न प्रगटै सोय।
कै जिय जाने आपनो, जा सिर बीती होय ॥२१॥

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाँति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन ॥२२॥

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय ॥२३॥

कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय।
प्रभु की सो अपनी कहै, क्यों न फजीहत होय ॥२४॥

करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन * हजूर।
मानहु टेरत बिटप चढ़ि, मोहि समान को कूर § ॥२५॥

करमहीन रहिमन लखो, धँस्यो बड़े घर चोर।
चिन्तन ही बड़ लाभ के, जागत ह्वै गो भोर ॥२६॥

कहि रहीम इक दीप तें, प्रगट सबै दुति ¶ होय।
तन-सनेह कैसे दुरै, दृग-दीपक जरु दोय ॥२७॥

कहि रहीम जग मारियो, नैन-बान की चोट।
भगत भगत कोउ बचि गये, चरन-कमल की ओट ॥२८॥

कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै उनको कहा, घास बेचि जे खात ॥२९॥

कहि रहीम या जगत से, प्रीति गई दै टेरि।
रहि रहीम नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेरि ॥३०॥

---

* पाठा०-गुनी। § पाठा०-यहि प्रकार हम कूर। ¶ पाठा०-निधि।

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति-कसौटी जे कसे, सोही सॉचे मीत ॥३१॥

कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अंत चले पछिताय ॥३२॥

कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को सङ्ग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अङ्ग ॥३३॥

कहु रहीम कैसे बनै, अनहोनी ह्वै जाय।
मिला रहै औ ना मिलै, तासों कहा बसाय ॥३४॥

कागद को सो पूतरा, सहजहि में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खैंचत बाय ॥३५॥

काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
रहिमन भँवरी के भए, नदी सिरावत मौर ॥३६॥

काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेइ †।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ ॥३७॥

काह करौं बैकुंठ लै, कल्पबृच्छ की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल पीतम-बाँह ॥३८॥

काह कामरी पामड़ी, जाड़ गए से काज।
रहिमन भूख बुताइये, कैस्यो मिलै अनाज ॥३९॥

कुटिलन सङ्ग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करें, उरज उमेठे जाहिं ॥४०॥

कैसे निबहै निबल जन, करि सबलन सों गैर।
रहिमन बसि सागर बिषे, करत मगर सों बैर ॥४१॥

---

† पाठा०—रह्यो न काहू काम को, सेंत न कोऊ लेइ।

कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गए पछिताय।
संपति के सब जात हैं, बिपति सबै लै जाय ॥४२॥
कौन बड़ाई जलधि मिलि, *गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, † पर घर गए रहीम ॥४३॥
खरच बढ़्यो उद्यम घट्यो, नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए, थोरे जल को मीन ॥४४॥
खीरा सिर तें काटिए, मलियत § नमक बनाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय ॥४५॥
खैंचि चढ़नि, ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति।
आज काल मोहन गही, बंस दिया की रीति ¶ ॥४६॥
खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान ॥४७॥
गरज आपनी आप सों, रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुलबधू पर-घर जात लजाय ॥४८॥
गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत-उधार कर, और न कछू उपाव ॥४९॥
गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहु ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि ॥५०॥
गुरुता फबै रहीम कहि, फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं, अनत बतौरी आहि ॥५१॥

---

* पाठा०—जाय समानी उदधि में,

† पाठा०—काकी महिमा नहि घटी,

§ पाठा०—भरिए।

¶ सं० १८१४ मे रचित वैष्णवदास-कृत भक्तमाल प्रसंग में यह पाठ है।
खिंचे चढ़त ढीले ढरत, अहो कोन यह प्रीति।
आज काल मोहन गही, वस दिये की रीति ॥

चरन छुए मस्तक छुए, तेहु नहिं छाँड़ति पान।
हियो छुवत प्रभु छोड़ि दै, कहु रहीम का जानि ॥५२॥

चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेय।
ज्यों रहीम आटा लगे, त्यों मृदंग स्वर देय ॥५३॥

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जा पर बिपदा पड़त है, सो आवत यहि देस ॥ ॥५४॥

छिमा बड़न को चाहिए, छोटिन के उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥५५॥

छोटिन सों सोहैं बड़े, कहि रहीम यह रेख।
सहसन को हय बांधियत, लै दमरी की मेख ॥५६॥

जब लगि जीवन जगत में, सुख दुख मिलन अगोट।
रहिमन फूटे गोट ज्यों, परत दुहुन सिर चोट ‡ ॥५७॥

जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिंन हित होय ॥५८॥

जलहि मिलाय रहीम ज्यों, कियो आप सम छीर।
अँगवहि आपुहि आप त्यों, सकल आँच की भीर ॥५९॥

जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यह रहीम जग जोय।
मँड़ए तर की गाँठ में, गाँठ गाँठ रस होय ॥६०॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाड़त छोह ॥६१॥

 पाठा०—आए राम रहीम कवि, किए जती को भेष।
जाको विपता परति है, सो कटती तुव देस ॥

‡ पाठा०—रहिमन यह संसार में, सब सुख मिलत अगोट।
जैसे फूटे नरद के, परत दुहुन सिर चोट ॥

जिहि अंचल दीपक दुरयो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात ॥६२॥

जिहि रहीम तन मन लियो, कियो हिए बिच भौन।
तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन ॥६३॥

जे गरीब पर हित करें, * ते रहीम बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई जोग ॥६४॥

जे रहीम बिधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि ॥६५॥

जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहि।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि कै सुलगाहिं ॥६६॥

जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय।
ताको बुरो न मानिये, लैन कहाँ सूं जाय ॥६७॥

जैसी परै सो सहि रहे, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है, सीत, घाम औ मेह ॥६८॥

जो अनुचित-कारी तिन्हैं, लगै अंक परिनाम।
लखे उरज उर बेधियत, क्यों न होय मुख स्याम ॥६९॥

जो घर ही में घुसि रहे, कदली सुपत सुडील।
तो रहीम तिनते भले, पथ के अपत करील ॥७०॥

जो पुरुषारथ ते कहूँ, संपति मिलत रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥७१॥

जो बड़ेन को लघु कहें, नहि रहीम घटि जाहिं।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं ॥७२॥

---

* पाठा०–को आदरै।

जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराय।
जो जल उमगै पार तें, सो रहीम बहि जाय ‡ ॥७३॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥७४॥

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय ※।
प्यादे सो फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय † ॥७५॥

जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को इहै हवाल।
तौ काहे कर पर धरयो, गोबर्धन गोपाल ‡ ॥७६॥

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजिआरो लगे, बढ़े अँधेरो होय ॥७७॥

जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बढ़े उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरो होय ॥७८॥

जो रहीम मन हाथ है, तो तन कहुँ किन जाहि $।
जल में जो छाया परे, काया भीजति नाहिं ॥७९॥

जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट-ओट।
समय परे ते होत है, वाही पट की चोट ॥८०॥

जो रहीम पगतर परो, रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रोयबो, आँसु गारिबो खीस ८१॥

---

‡ पाठा०—तिहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराय।
उमड़ि चलै जल पार ते, तौ रहीम बहि जाय॥

※ पाठा०—छोटो बढ़ै, बढ़त करत उतपात।

† पाठा०—तिरछो तिरछो जात।

‡ पाठा०—तो कत मातहि दुख दियो, गिरवर धरि गोपाल।

$ जो रहीम तन हाथ है, मनसा कहूँ किन जाहि। पाठा०—तनुआ

जो रहीम होती कहूँ, प्रभु गति अपने हाथ।
तो कोधौ केहि मानतो, आप बड़ाई साथ ॥८२॥

जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात ॥८३॥

ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ ॥८४॥

टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोइए, टूटे मुक्ताहार ॥८५॥

तन रहीम है कर्मबस, मन राखो ओहि ओर।
जल में उलटी नाव ज्यों, खैंचत गुरु के जोर ॥८६॥

तबहीं लौ जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम ॥८७॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहि न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान ॥८८॥

तैं* रहीम अब कौन है, एती खैंचत बाय।
खस कागद को पूतरा, नमी माहिं घुल जाय ॥८९॥

तैं* रहीम मन आपनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि वासर लाग्यो रहे, कृष्णचन्द्र की ओर ॥९०॥

थोथे बादर कार के, ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करें पाछिली बात ॥९१॥

थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहत न कोय ॥९२॥

---

* पाठा०—जिहि

दादुर मोर, किसान मन, लग्यो रहै घन माहिं।
रहिमन चातक रटनि हू, सरवर को कोउ नाहिं ॥९३॥

दिव्य दीनता के रसहिं, का जाने जग अंधु।
भली बिचारी दीनता दीनबंधु से बंधु ॥९४॥

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहि लखै, दीनबंधु सम होय ॥९५॥

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं ॥९६॥

दुख नर सुनि हाँसी करैं, धरत रहीम न धीर।
कही सुनै सुनि सुनि करै, ऐसे वे रघुबीर ॥९७॥

दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि ॥९८॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि ॥९९॥

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरे, याते नीचे नैन ॥१००॥

दोनों रहिमन एक से, जौ लौ बोलत नाहि।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु वसंत के माँहि ॥१०१॥

धन थोरो इज्जत बड़ी, कहि रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलवधू, चिथड़न माँहि समात ॥१०२॥

धन दारा अरु सुतन सो, लगो रहे नित चित्त।
नहिं रहीम कोऊ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त * ॥१०३॥

---

* पाठा०—मैं, रहत लगाए चित्त। क्यो रहीम खोजत नहीं, गाढ़े दिन को मित्त ॥

धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंर को भाय ॥१०४॥

धनि रहीम जल पङ्क को, लघु जिय पिअत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत † पिआसो जाय ॥१०५॥

धरती की सी रीत है, सीत घाम औ मेह।
जैसी परे सो सहि रहै, त्यों रहीम यह देह ॥१०६॥

धूर धरत नित सीस पै§, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूंढ़त गजराज ॥१०७॥

नहिं रहीम कछु रूप गुन, नहिं मृगया अनुराग।
देसो स्वान जो राखिये, भ्रमत भूखही लाग ॥१०८॥

नात नेह दूरी भली, लो रहीम जिय जानि।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही को पानि ॥१०९॥

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु ते अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥११०॥

निज कर क्रिया रहीम कहि, सिधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥१११॥

नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन।
मोठो भावै लोन पर, अरु मीठे पर लौन ॥११२॥

पन्नगबेलि पतिव्रता, रिति सम सुनो सुजान।
हिम रहीम बेली दही, सत जोजन दहियान ॥११३॥

परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस।
बामन है बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस ॥११४॥

---

† पाठा०—पील।

§ पाठा०—गज रज ढूढत गलिन में।

पसरि पत्र झंपहि पितहिं, सकुचि देत ससि सीत।
कछु रहीम कुल कमल के, को बैरी को मीत ॥११५॥

पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो बरैगो कौन ‡ ॥११६॥

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भए, हमको पूछत कौन ॥११७॥

पूरुष पूजें देवरा, तिय पूजैं रघुनाथ।
कहि रहीम दोउन बनै, पड़ो बैल को साथ ॥११८॥

प्रीतम * छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिरि जाय ¶ ॥११९॥

फरजी साह न ह्वै सके, गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधे चाल सों, प्यादो होत वजीर ‡ ॥१२०॥

बड़ माया को दोप यह, जो कबहूँ घटि जाय।
तो रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जियै वलाय ॥१२१॥

बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि † ॥१२२॥

बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथिहिं हहरि कै, दिये दांत द्वै काढ़ि ॥१२३॥

---

‡ पाठा०—ते, काज सरैगो कौन।

* पाठा०—मोहन ¶ पाठा०—ज्यों, पथिक आय फिरि जाय॥

‡ पाठा०—रहिमन सीधी चाल सों, प्यादो होत वजीर।
फरजी मीर न ह्वै सके, टेढ़ी के तासीर॥

† पाठा०—अरज सुनत लरजै तुरत, गरज मिटाई आनि।
कहिं रहीम का दिन हुती, हरि हाथी पहिचानि॥

बड़े बड़ाई नहिं तजै, लघु रहीम इतराइ।
राइ करौंदा होत है, कटहर होत न राइ ॥१२४॥
बड़े बड़ाई ना करैं, बड़ो न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहे, लाख टका मेरो मोल ॥१२५॥
बढ़त रहीम धनाढ्य धन, धनै धनी के जाइ।
घटै बढ़ै वाको कहा, भीख माँग जो खाइ ॥१२६॥
बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस ॥१२७॥
बाँकी चितवन चित गढ़ी, सूधी तो कछु धीम।
गाँसी ते बढ़ि होत दुःख, काढ़ि न सकत रहीम ॥१२८॥
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय ॥१२९॥
बिपति भए धन ना रहे, रहे जो लाख करोर।
नभ तारे छिपि जात हैं, ज्यों रहीम भय भोर ॥१३०॥
भजौं तो काको मैं भजौं, तजौं तो काको आन।
भजन तजन ते बिलग हैं, तेहि रहीम तू जान ॥१३१॥
भलो भयो घर ते छुट्यो, हस्यो सीस परि खेत।
काके काके नवत हम, अपन पेट के हेत ॥१३२॥
भार झोंकि के भार में, रहिमन उतरे पार।
पै बूड़े मँझधार में, जिनके सिर पर भार * ॥१३३॥
भावी काहू ना दही, भावी दह भगवान †।
भावी ऐसी प्रबल है, कहि रहीम यह जान ॥१३४॥

---

* पाठा०—जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस ?
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ॥

† पाठा०—दही एक भगवान।

भावी या उनमान की, पांडव बनहि रहीम।
तदपि गौरि सुनि बाँझ है, वरु है संभु अजीम ॥१३५॥

भीत गिरी पाखान की, अररानी वहि ठाम।
अब रहीम धोखो यहै, को लागै केहि काम ॥१३६॥

भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिरि ते भूमि लौं, लखौ तो एकै रूप ॥१३७॥

मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥१३८॥

मनसिज माली की उपज, कही रहीम नहि जाय।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय † ॥१३९॥

मन सों कहाँ रहीम प्रभु, दृग सों कहाँ दिवान।
देखि दृगन जो आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान ॥१४०॥

महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेष।
सो अर्जुन वैराट घर, रहे नारि के भेष ॥१४१॥

मानसरोवर ही मिले, हंसनि मुक्ता-भोग।
सफरिन भरे रहीम सर, वक-वालकनहिं जोग * ॥१४२॥

मान सहित बिष खाय के, संभु भए जगदीस।
बिना मान अमृत पिए, राहु कटायो सीस ॥१४३॥

माह मास लहिं टेसुआ, मीन परे थल और।
त्यों रहीम जग जानिए, छुटे आपुने ठौर ॥१४४॥

माँगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ि काम।
तीन पैड़ बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥१४५॥

---

† पाठा०—फूल श्याम के उर लगे, फल श्यामा उर आय ॥

* पाठा०—त्रिपुल वलाकनि जोग।

माँगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ ॥१४६॥

मुकता कर, करपूर कर, चातक-जीवन जोय ¶।
येतो बड़ो रहीम जल, व्याल-बदन विष होय ‡ ॥१४७॥

मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु, गुह मातंग।
तीनों तारे रामजू, तीनों मेरे अंग ॥१४८॥

मूढ़मंडली में सुजन, ठहरत नहीं बिसेखि।
स्याम कंचन में सेत ज्यों, दूरि कीजिअत देखि ॥१४९॥

मंदन के मरिहू गए, औगुन गन न सराहि।
ज्यों रहीम बाघहु बधे, मरहा ह्वै अधिकाहि ॥१५०॥

यद्यपि अवनि अनेक हैं, कूपवंत † सरिताल।
रहिमन मानसरोवरहिं, मनसा करत मराल ॥१५१॥

यह न रहीम सराहिए, देन लेन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिए, हारि होय कै जीत ॥१५२॥

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीत, अभ्यास, जस, होत होतही होय ॥१५३॥

यह रहीम मानै नहीं, दिल से नवा न होय।
चीता, चोर, कमान के, नए ते अवगुन होय ॥१५४॥

याते जान्यों मन भयो, जरि बरि भस्म बलाय।
रहिमन जाहि लगाइए, सो रूखो ह्वै जाय ॥१५५॥

ये रहीम फीके दुवौ, जानि महा संतापु।
ज्यों तिय कुच आपन गहे, आप बड़ाई आपु ॥१५६॥

¶ पाठा०—चातक तृष्न हर सोय। ‡ पाठा०—कुपल परे विष होय।
† पाठा०—तोयवंत (जल भरे)

यों रहीम गति बड़न की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥१५७॥

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह भाँति।
उवत चंद जेहिं भांति सों, अथवत ताही भाँति ॥१५८॥

रन, बन, व्याधि, बिपत्ति में, रहिमन मरै न रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गए कि सोय ॥१५९॥

रहिमन अती न कीजिए, गहि रहिए निज कानि।
सैंजन अति फूले तऊ, डार पात की हानि ॥१६०॥

रहिमन अपने गोत को, सबै चहत उत्साह।
मृग उछरत आकास को, भूमी खनत बराह ॥१६१॥

रहिमन अपने* पेट सों, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाए रहे, तोसों को† अनखाय ॥१६२॥

रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गँभीर।
बागन बिच बिच देखिअत सेंहुड़ कंज करीर ॥१६३॥

रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय ॥१६४॥

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेहते, कस न भेद कहि देइ ॥१६५॥

रहिमन आँटा के लगे, बाजत है दिन राति।
घिउ शक्कर जे खात हैं, तिनकी कहा बिसाति ॥१६६॥

रहिमन इक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन पड़े पहार ॥१६७॥

---

* पाठा०—मै या † पाठा०—का काहू।

रहिमन उजली प्रकृति को, नहीं नीच को संग।
करिया बासन कर गहे, कालिख लागत अंग ॥१६८॥

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटै स्वान के, दोउ भाँति विपरीत ॥१६९॥

रहिमन कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत ॥१७०॥

रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस।
भार धरैं संसार को, तऊ कहावत सेस ॥१७१॥

रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दाँत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक ॥१७२॥

रहिमन कहत सु पेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करै, भरे बिगारत दीठ † ॥१७३॥

रहिमन कुटिल कुठार ज्यों, करि डारत द्वै टूक।
चतुरन के कसकत रहे, समय चूक की हूक ॥१७४॥

रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी, चोर, लबार।
जो पत-राखन-हार हैं, माखन-चाखन-हार ॥१७५॥

---

† पाठा०–[१] कहि रहीम या पेटने, दुहि विधि दीनी पीठ।
भूखे भीख मँगावई, भरे डिगावे डीठ ॥
(हमारी प्राचीन लिपि)

[२] रहिमन पेटे सों कहे, क्यो न भई तुम पीठ।
भूखे मान बिगारहु, भरे बिगारहु दीठ ॥
(शिवसिंह-सरोज)

[३] रहिमन भाखत पेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
भूखे मान डिगावही, भरे बिगारत दीठ ॥

रहिमन खोटी आदि की, सो परिनाम लखाय।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय॥१७६॥

रहिमन गली है साँकरी, दूजो ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं॥१७७॥

रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठ।
रीतिहि सनमुख होत है, भरी दिखावै पीठ॥१७८॥

रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नाँद लै लेइ॥१७९॥

रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर॥१८०॥

रहिमन छोटे नरन सों, होत बड़ो नहि काम।
मढ़ो दमामो ना बने, सौ चूहे के चाम॥१८१॥

रहिमन जगत-बड़ाइ की, कूकुर की पहिचानि।
प्रीति करै मुख चाटई, वैर करे तन हानि॥१८२॥

रहिमन जग जीवन बड़े, काहु न देखे नैन।
जाय दसानन अछत ही, कपि लागे गथ * लेन॥१८३॥

रहिमन जाके बाप को, पानी पिअत न कोय।
ताकी गैल अकास लौं, क्यों न कालिमा होय॥१८४॥

रहिमन जा डर निसि परै, ता दिन डर सिर कोय।
पल पल करके लागते, देखु कहाँ धौं होय॥१८५॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहिगै सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल॥१८६॥

* पाठा०—गढ़।

रहिमन जो तुम कहत हो, संगति ही गुन होय।
बीच उखारी रसमरा, रस काहे ना होय ॥१८७॥

रहिमन जो रहिबो चहै, कहै वाहि के दाव।
जो वासर को निसि कहै †, तौ कचपची दिखाव ॥१८८॥

रहिमन ठठरी * धूरि की, रही पवन ते पूरि।
गाँठ युक्ति की खुलि गई, अंत धूरि की धूरि ॥१८९॥

रहिमन तब लगि ठहरिए, दान मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहि करिय पयान ॥१९०॥

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि।
पर बस परे, परोस बस, परे मामिला जानि ॥१९१॥

रहिमन तुम हमसों करी, करी करी जो तीर।
बाढ़े दिन के मीत हो, गाढ़े दिन रघुबीर ॥१९२॥

रहिमन तीर की चोट ते, चोट परे बचि जाय।
नैन-बान की चोट ते, चोट परे मरि जाय $ ॥१९३॥

रहिमन थोरे दिनन को, कौन करे मुह स्याह।
नही छलन को परतिया, नहीं करन को व्याह ॥१९४॥

रहिमन दानि दरिद्रतर, तऊ जांचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुँआ खनावत लोग ॥१९५॥

रहिमन दुरदिन के परे, बड़ेन किए घटि काज।
पाँच रूप पॉडव भए, रथवाहक नलराज ॥१९६॥

---

† पाठा०—जो नृप वासर निसि कहै।

* पाठा०—गठरी।

$ पाठा०—धन्वन्तरि न बचाय।

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरवारि ॥१९७॥

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय †।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गाँठ पड़ जाय ॥१९८॥

रहिमन धोखे भाव से, मुख से निकसे राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम ॥१९९॥

रहिमन निज मन की बिथा, मनही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहै कोय ॥२००॥

रहिमन निज सम्पति बिना, कोउ न बिपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रवि सकै बचाय ॥२०१॥

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे ❀, मद समुझै सब ताहि ॥२०२॥

रहिमन नीच प्रसंग ते, नित प्रति लाभ विकार।
नीर चोरावति संपुटी, मारु सहत घरिआर ॥२०३॥

रहिमन पर-उपकार के, करत न यारी बीच।
माँस दियो शिवि भूप ने, दीन्हों हाड़ दधीच ॥२०४॥

रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती, मानुष, चून ॥२०५॥

रहिमन पैड़ा प्रेम को, निपट सिलसिली गैल।
बिछलत पाँव पिपीलि को, लोग लदावत बैल ॥२०६॥

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन ॥२०७॥

---

† पाठा०—चटकाय।

❀ पाठा०—कलारिन हाथ लखि।

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ॥२०८॥

रहिमन ब्याह बिआधि है, सकहु तो जाहु बचाय।
पॉयन बेड़ी परत है, ढोल बजाय बजाय ॥२०९॥

रहिमन बहु भेषज करत, व्याधि न छॉड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥२१०॥

रहिमन बात अगम्य की, कहन सुनन की नाहिं।
जे जानत ते कहत नहिं, कहत ते जानत नाहि ॥२११॥

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनै नाम ॥२१२॥

रहिमन भेषज के किए, काल जीति जो जात।
बड़े बड़े समरथ भए, तौ न कोउ मरि जात ॥२१३॥

रहिमन मनहिं लगाइ के, देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होय ॥२१४॥

रहिमन मारग प्रेम को, मत मतिहीन मझाव *।
जो डिगिहै तो फिर कहूँ, नहिं धरने को पॉव † ॥२१५॥

रहिमन मॉगत बड़ेन की, लघुता होत अनूप।
बलि मख मॉगन को गए, धरि बावन को रूप ॥२१६॥

रहिमन मैन-तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक मॉहि।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाँहि ॥२१७॥

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायनहू को भयो, बावन ऑगुर गात ॥२१८॥

---

* पाठा०—बिन बूझे मति जाव।

† पाठा०—नही धरन को पॉव ॥

रहिमन यह तन सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ि जान दे, गरुए राखि बटोर ॥२१९॥

रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत ॥२२०॥

रहिमन रजनी ही भली, पिय सों होय मिलाप।
खरो दिवस किहि काम को, रहिबो आपुहि आप ॥२२१॥

रहिमन रहिबो वा भलो, जौ लौं सील समूच।
सील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच ॥२२२॥

रहिमन रहिला की भली, जो परसै चित लाय।
परसत मन मैला करे, सो मैदा जरि जाय ॥२२३॥

रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन खोय ॥२२४॥

रहिमन राम न उर धरै, रहत विषय लपटाय।
पसु खर खात सवाद सों, गुर गुलियाए खाय * ॥२२५॥

रहिमन रिस को छाँड़िकै, करौ गरीबी भेस।
मीठो बोलो नै चलो, सबै तुम्हारो देस ॥२२६॥

रहिमन रिस सहि तजत नहिं, बड़े प्रीति की पौरि।
मूकन मारत आवई, नींद बिचारी दौरि ॥२२७॥

रहिमन रीति सराहिये, जो घट गुन-सम होय।
भीति आप पै डारि कै, सबै पियावै तोय ॥२२८॥

रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पिअतहू, साँप सहज धरि खाय ॥२२९॥

---

*पाठा०—कहि रहीम नहिं लेत है, रह्यो विषय लपटाय।
घास चरै पसु आपते, गुड़ लौलाए खाय ॥

रहिमन वहाँ न जाइए, जहाँ कपट को हेत।
हम तन ढारत ढेकुली, सींचत अपनो खेत ॥२३०॥

रहिमन वित्त अधर्म को, जरत न लागै बार।
चोरी करि होरी रची, भई तनिक † में छार ॥२३१॥

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान।
भू पर जनम वृथा धरै, पसु बिन पूँछ विपान ॥२३२॥

रहिमन विपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥२३३॥

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहि।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहि ॥२३४॥

रहिमन सुधि सबते भली, लगै जो बारंबार।
बिछुरे मानुप फिर मिलें, यहै जान अवतार ॥२३५॥

रहिमन सो न कछू गनै, जासों लागैं नैन।
सहि के सोच वेसाहियो, गयो हाथ को चैन ॥२३६॥

राम न जाते हरिन सँग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होत आपुने हाथ ॥२३७॥

राम-नाम जान्यो नहीं, भइ पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि ॥२३८॥

राम-नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि।
कहि रहीम तिहि आपुनो, जनम गँवायो वादि ॥२३९॥

रीति प्रीति सबसों भली, वर न हित मित गोत।
रहिमन याहि जनम की, वहुरि न संगति होत ॥२४०॥

---

† पाठा०—छनिक।

रूप कथा पद चारु पट, कंचन दोहा* लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्म गति, मोल रहीम बिसाल ॥२४१॥
रूप बिलोकि रहीम तहँ, जहँ जहँ मन लगि जाय।
थाके ताकहि आप बहु, लेत छोड़ाय छोड़ाय ॥२४२॥
रौल बिगाड़े राजकूं, मौल बिगाड़े माल।
सनै सनै सरदार की, चुगल बिगाड़े चाल ॥२४३॥
लिखी रहीम लिलार में, भई आन की आन।
पद कर काटि बनारसी, पहुँचे मगरु-स्थान¶ ॥२४४॥
बरु रहीम कानन भलो, वास करिय फल भोग†।
बंधु-मध्य धनहीन ह्वै, बसिबो उचित न योग ॥२४५॥
वहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिलो हेत।
घटत घटत रहिमन घटै, ज्यों कर लीन्हें रेत ॥२४६॥
बिरह रूप घन तम भयो, अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत ॥२४७॥
वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग‡।
बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग ॥२४८॥
सदा नगारा कूच का, बाजत आठों जाम।
रहिमन या जग आइकै, को करि रहा मुकाम ॥२४९॥
सबको सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए, जब कछु अटकै काम ॥२५०॥
सबै कहावै लसकरी, सब लसकर कहँ जाय।
रहिमन सेल्ह जोई सहै, सोई जगीरै खाय ॥२५१॥

---

* पाठा०-दूवा। ¶ पाठा०-मगहर-थान।
† पाठा०-असन करिय फल तोय।
‡ पाठा०-यो रहीम सुख होत है, उपकारी के अंग।

समय दसा कुल देखि कै, सबै करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ॥२५२॥

समय परे ओछे बचन, सब के सहे रहीम।
सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहे भीम ॥२५३॥

समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जात।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछितात ॥२५४॥

समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक ॥२५५॥

सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम ॥२५६॥

सर सूखे पच्छी उड़ैं, औरे सरन समाहि।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहि ॥२५७॥

स्वारथ रचत रहीम सब, औगुनहू जग माँहिं।
बड़े बड़े बैठे लखौ, पथ रथ-कूवर-छाँहि ॥२५८॥

स्वासह तुरिय जो उच्चरै, तिय है निहचल चित्त।
पूत परा घर जानिए, रहिमन तीन पवित्त ॥२५९॥

साधु सराहै साधुता, जती जोखिता जान।
रहिमन साँचे सूर को, वैरी करै बखान ॥२६०॥

सौदा करो सो करि चलो, रहिमन याही घाट।
फिर सौदा पैहो नहीं, दूरि जान है बाट ॥२६१॥

संतत संपति जान के, सब को सब कुछ देत*।
दीनबंधु बिनु दीन की, को रहीम सुधि लेत ॥२६२॥

---

* पाठा०—सप्रति सपतिवान को, सब कोऊ वसु देत।

संपति भरम गँवाइकै, हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहि मांहिं ॥२६३॥

ससि की सीतल चाँदनी, सुंदर सबहिं सुहाय।
लगे चोर चित में लटी, घटि रहीम मन आय ॥२६४॥

ससि, सँकोच, साहस, सलिल, मान, सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है, घटत घटत घटि सीम ॥२६५॥

सीत हरत, तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक*।
रहिमन तेहि रवि को कहा, जो घटि लखै उलूक ॥२६६॥

हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर ॥२६७॥

हित रहीम इतऊ करै, जाकी जहाँ बसात।
नहि यह रहै न वह रहै, रहै कहन को बात ॥२६८॥

होत कृपा जो बड़ेन की, सो कदापि घटि जाय।
तौ रहीम मरिबो भलो, यह दुख सहो न जाय ॥२६९॥

होय न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बढ़िहू सो बिनु काज ही, जैसे तार खजूर ॥२७०॥

सोरठा

ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों।
तातो जारै अंग, सीरे पै कारो लगे ॥२७१॥

रहिमन कीन्हीं प्रीति, साहब को भावै नहीं।
जिनके अगनित मीत, हमैं गरीबन को गनैं ॥२७२॥

---

* पाठा०—नैन खुलत वे चूक।

रहिमन जग की रीति, मैं देख्यो रस ऊख में।
ताहू में परतीति, जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं ॥२७३॥

रहिमन नीर पखान, बूड़ै पै सीझै नहीं।
तैसे मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं ॥२७४॥

रहिमन बहरी बाज, गगन चढ़े फिर क्यों तिरै।
पेट अधम के काज, फेर आय बंधन परै ॥२७५॥

रहिमन मोहिं न सुहाय, अमी पिआवै मान बिनु।
बरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ॥२७६॥

बिंदु भी सिंधु समान, को अचरज कासों कहै।
हेरनहार हेरान, रहिमन अपुने आपतें ॥२७७॥

नगर-शोभा

आदि रूप की परम दुति, घट घट रही समाइ।
लघु मति ते मो मन रसन, अस्तुति कही न जाइ॥ १॥

नैन तृप्ति कछु होत है, निरखि जगत की भाँति।
जाहि ताहि में पाइयत, आदि रूप की काँति॥ २॥

उत्तम जाती ब्राह्मणी, देखत चित्त लुभाय।
परम पाप पल में हरत, परसत वाके पाय॥ ३॥

परजापति परमेश्वरी, गंगारूप समान।
जाके अंग तरंग में, करत नैन अस्नान॥ ४॥

रूप रंग रतिराज में, खतरानी इतरान।
मानों रची बिरंचि पचि, कुसुम कनक में सान॥ ५॥

पारस पाहन की मनो, धरै पूतरी अंग।
क्यों न होइ कंचन वहू, जे बिलसै तिहि संग॥ ६॥

कबहुँ दिखावै जौहरनि, हँसि हँसि मानक लाल।
कबहूँ चखते च्वै परै, टूटि मुकुत की माल॥ ७॥

जद्यपि नैननि ओट है, बिरह चोट बिन घाइ।
पिय उर पीरा ना करै, हीरा सी गड़ि जाइ॥ ८॥

कैथनि कथन न पारई, प्रेम कथा मुख बैन।
छाती ही पाती मनों, लिखै मैन की सैन॥ ९॥

बरुनि बार लेखनि करै, मसि काजरि भरि लेइ।
प्रेमाक्षर लिख नैन ते, पिय बाँचन को देइ॥१०॥

चतुर चितेरनि चित हरै, चख खंजन के भाइ।
द्वै आधौ करि डारई, आधौ मुख दिखराइ॥११॥

[illegible] मोरे मित्र।
पलक न टारै बदन ते, पलक न [illegible] चित्र ॥१२॥

नेक न चित तें ऊतरै, ज्यों कागद में चित्र ॥१२॥
सुरंग बरन वरइन बनी, नैन खवाये पान।
निसदिन फेरैं पान ज्यों, विरही जन के प्रान ॥१३॥
पानी पीरी अति बनी, चन्दन खौरे गात।
परसत बीरी अधर की, पीरी कै ह्वै जात ॥१४॥
परम रूप कंचन बरन, सोभित नारि सुनारि।
मानों साँचे ढारि कै, बिधिना गढ़ी सुनारि ॥१५॥
रहसनि बहसनि मन हरै, घोर घोर तन लेहि।
औरन को चित चोरि कै, आपुन चित्त न देहि ॥१६॥
बनियाँइन बनि आइकै, बैठि रूप की हाट।
पेम पेक तन हेरि कै, गरुवे टारत बाट ॥१७॥
गरब तराजू करत चख, भौंह मोरि मुसक्यात।
डाँड़ी मारत बिरह की, चित चिन्ता घटि जात ॥१८॥
रँगरेजनि के संग मैं, उठत अनंग-तरंग।
आनन ऊपर पाइयतु, सुरत अन्त के रंग ॥१९॥
मारत नैन कुरंग ते, मो मन मार मरोर।
आपन अधर सुरंग ते, कामी काढ़तु बोर ॥२०॥
गत्ति गरूर गयन्द जिमि, गोरे बरन गँवार।
जाके परसत पाइयै, घनवा की उनहार ॥२१॥
घरो भरो धरि सीस पर, बिरही देखि लजाइ।
कूक कंठ तैं बाँधि कै, लेजू लै ज्यों जाइ ॥२२॥
भाटा बरन सु कौजरी, बेचै सोवा साग।
निलजु भई खेलत सदा, गारी दै दै फाग ॥२३॥

हरी भरी डलिया निरखि, जो कोई नियराति।
झूठे हू गारी सुनत, साचेहू ललचात ॥२४॥
बनजारी झुमकत चलत, जेहरि पहरै पाइ।
वाके जेहरि के सबद, बिरही हर जिय जाइ ॥२५॥
और बनज व्यौपार को, भाव विचारै कौन।
लोइन लोने होत है, देखत वाको लौन ॥२६॥
बरवाके माँटी भरे, कौंरी बैस कुम्हार।
द्वै उलटे सरवा मनौ, दीसत कुच उनहार ॥२७॥
निरखि प्रान घट ज्यों रहै, क्यों मुख आवै वाक।
उर मानौं आबाद है, चित्त भमैं जिमि चाक ॥२८॥
बिरह अगिनि निसदिन धवै, उठै चित्त चिनगार।
बिरही जियहि जराइ कै, करत लुहार लुहार ॥२९॥
राखत मो मन लोह-सम, पार प्रेम घन टौर।
बिरह अगिन में ताइकै, नैन नीर में बोर ॥३०॥
कलवारी रस प्रेम को, नैननि भर भर लेत।
जोबन-मद माँती फिरै, छाती छुवन न देत ॥३१॥
नैनन प्याला फेरि कै, अधर गजक जब देत।
मतवारेकी मत हरै, जो चाहै सो लेत ॥३२॥
परम ऊजरी गूजरी, दह्यौ सीस पै लेइ।
गोरस के मिसि डोलही, सो रस नेक न देइ ॥३३॥
गाहक सों हँसि बिहँसि कै, करत बोल अरु कौल।
पहिले आपुन मोल कहि, कहत दही को मोल ॥३४॥
काछिनि कछू न जानई, नैन बीच हित चित्त।
जोबन जल सींचत रहै, काम कियारी नित्त ॥३५॥

कुच भाटा गाजर अधर, मूरा से भुज भाइ।
बैठी लौका बेचई, लेटी खीरा खाइ ॥३६॥

हाथ लिये हत्या फिरे, जोबन गरब हुलास।
धरै कसाइन रैन दिन, बिरही रकत पिपास ॥३७॥

नैन कतरनी साजि कै, पलक सैन जब देइ।
बरुनी की टेढ़ी छुरी, लेह छुरी सों टेइ ॥३८॥

हियरा भरै तबाखिनी, हाथ न लावन देत।
सुरवा नेक चखाइ कै, हड़ी झारि सब देत ॥३९॥

अधर सुधर चख चीकनै, वे भरहैं तन गात।
वाको परसो खात ही, बिरही नहिन अघात ॥४०॥

बेलन तिली सुवास कै, तेलनि करै फुलेल।
बिरही दृष्टि कियौ फिरै, ज्यों तेली को बैल ॥४१॥

कबहू मुख रूखौ किये, कहै जीय की बात।
वाको करुवो बचन सुनि, मुख मीठो ह्वै जात ॥४२॥

पाटम्बर पटइन पहर, सेंदुर भरे ललाट।
बिरही नेकु न छाँड़ही, वा पटवा की हाट ॥४३॥

रस रेसम बेचत रहै, नैन सैन की सात।
फूँदी पर को फौंदना, करै कोटि जिय घात ॥४४॥

भटियारी अरु लच्छमी, दोऊ एकै घात।
आवत बहु आदर करे, जात न पूछै बात ॥४५॥

भटियारी उर मुह करै, प्रेम पथिक को ठौर।
द्यौस दिखावै और की, रात दिखावै और ॥४६॥

करै गुमान कमागरी भौह कमान चढ़ाइ।
पिय कर गहि जब खैंचई, फिर कमान सी जाइ ॥४७॥

जो गात है पिय रस परस, रहै रोस जिय टेक।
सूधी करत कमान ज्यों, बिरह अगिन में सेक ॥४८॥

हँसि हँसि मारै नैन सर, वारत जिय बहु पीर।
वेझा ह्वै उर जात हौ, तीरगरन कै तीर ॥४९॥

प्रान सरीकन साल दै, हेरि फेरि कर लेत।
दुख संकट पै काढ़िके, सुख सरेस में देत ॥५०॥

छीप न छापौ अधर को, सुरंग पीक भर लेइ।
हँसि हँसि काम कलोल में, पिय मुख ऊपर देइ ॥५१॥

मानों मूरत मैन की, धरै रंग सुर तंग।
नैन रँगीले होत है, देखत वाको रंग ॥५२॥

सकल अंग सिकली गरनि, करत प्रेम औसेर।
करै बदन दर्पन मनों, नैन मुसकला फोर ॥५३॥

अंजन चख चंदन बदन, सोभित सेंदुर मंग।
अंगनि रंग सुरंग कै, काढ़ै अंग अनंग ॥५४॥

कर न काहू की सका, सक्किन जोवन रूप।
सदा सरम जल ते भरी, रहै चिवुक कै कूप ॥५५॥

सजल नैन वाके निरखि, चलत प्रेम सर फूट।
लोक लाज उर धाकते, जात मसक सी छूट ॥५६॥

सुरँग बसन तन गाँधिनी, देखत दृगन अघाय।
कुच माजू, कुटली अधर, मोचत चरन आय ॥५७॥

कामेश्वर नैननि धरै, करत प्रेम की केलि।
नैन माहिं चोवा नरे, छोरन माहि फुलेलि ॥५८॥

राज करत रजपूतई, देस रूप के दीप।
कर घूँघट पट ओट कै, आवत पियहि समीप ॥५९॥

सोभित मुख ऊपर धरै, सदा सुरत मैदान।
छूटी लटै बॅदूकची, भौहें रूप कमान ॥६०॥
चतुर चपल कोमल बिमल, पग परसत सतराइ।
रस ही रस बस कीजियै, तुरकिन तरकि-न जाइ ॥६१॥
सीस चूँदरी निरखि मन, परत प्रेम के जार।
प्रान इजारै लेत है, वाकी लाल इजार ॥६२॥
जोगिन जोगि न जानई, परै प्रेम रस माहिं।
डोलत मुख ऊपर लिये, प्रेम जटा की छॉहि ॥६३॥
मुख पै बैरागी अलक, कुच सिगी विष बैन।
मुदरा धारै अधर कै, मूँद ध्यान सों नैन ॥६४॥
भाटन भटकी प्रेम की, हट की रहै न गेह।
जोबन पर लटकी फिरे, जोरत तरक सनेह ॥६५॥
मुक्त माल उर दोहरा, चौपाई मुख लौन।
आपुन जोबन रूपकी, अस्तुति करै न कौन ॥६६॥
लेत चुराय डोमनी, मोहन रूप सुजान।
गाइ गाइ कछु लेत है, बॉकी तिरछी तान ॥६७॥
नेकु न सूधे मुख रहै, झुकि हॅसि मुरि मुसक्याइ।
उपपति की सुनि जात है, सरबस लेइ रिझाइ ॥६८॥
चेरी मॉती मैन की, नैन सैन के भाइ।
संक-भरी जॅभुवाइ कै, भुज उठाय ॲगराइ ॥६९॥
रंग रंगराती फिरै, चित्त न लावै गेह।
सब काहू तें कहि फिरै, आपुन सुरत सनेह ॥७०॥
बॉस चढ़ी नट बंदनी, मन बॉधत लै बॉस।
नैन मैन की सैन ते, कटत कटाछन सॉस ॥७१॥

अलबेली अद्भुत कला, सुध बुध ले बरजोर।
चोर चोर मन लेत है, ठार ठौर तन तौर ॥७२॥

बोलन पै पिय मन विमल, चितवति चित्त समाय।
निस बासर हिंदू तुरकि, कौतुक देखि लुभाय ॥७३॥

लटकि लेह कर दाइरौ, गावत अपनी ढाल।
सेत लाल छबि दीसियतु, ज्यों गुलाल की माल ॥७४॥

कंचन से तन कंचनी, स्याम कंचुकी अङ्ग।
भाना भामैं भोरही, रहै घटा के सङ्ग ॥७५॥

नैननि भीतर नृत्य कै, सैन देत सतराय।
छबि तै चित्त छुड़ावही, नट के भाइ दिखाय ॥७६॥

हरि गुन आवज केसवा, हिंसा बाजत काम।
प्रथम बिभासै गाइकै, करत जीत संग्राम ॥७७॥

प्रेम अहेरी साजि कै, बाँध पर्यौ रस तान।
मन मृग ज्यों रीझै नहीं, तोहि नैन के बान ॥७८॥

मिलत अङ्ग सब माँगना, प्रथम माँन मन लेइ।
घेर घेर उर राखही, र फेर नहिं देइ ॥७९॥

वहु पतंग जारत रहै, दीपक बारै देह।
फिर तन ग्रेह न आवही, मन जु चैटुवा लेह ॥८०॥

प्रान पूतरी पातरी, पातर कला निधान।
सुरत अङ्ग चित चोरई, काय पाँच रस वान ॥८१॥

उपजावै रस में विरस, विरस माहिं रस नेम।
जो कीजै विपरीत रति, अतिहि वढ़ाव प्रेम ॥८२॥

कहै आन की आँन कछु, बिरह पीर तन ताप।
औरे गाइ सुनावई, औरे कछू अलाप ॥८३॥

जुकिहारी जौवन लिये, हाथ फिरै रस हेत।
आपुन मास चखाइ कै, रकत आन को लेत ॥८४॥

बिरही के उर में गड़ै, स्याम अलक की नोक।
बिरह पीर पर लावई, रकत पियासी जोक ॥८५॥

बिरह बिथा खटकनि कहै, पलक न लावै रैन।
करत कोप वहुभाँत ही, धाइ मैन की सैन ॥८६॥

बिरह बिथा कोई कहै, समझै कछू न ताहि।
वाके जोबन रूप की, अकथ कथा कछु आहि ॥८७॥

जाहि ताहि के उर गड़ै, कुँदी बसन मलीन।
निसदिन वाके जाल में, परत फँसत मन मीन ॥८८॥

जो वाके अँग संग में, धरै प्रीत की आस।
वाको लागै महिमही, बसन वसेधी वास ॥८९॥

सबै अंग सबनीगरनि, दीसत मन-न कलंक।
सेत वसन कीने मनो, साबुन लाइ मतंक ॥९०॥

बिरह बिथा मन की हरे, महा विमल ह्वै जाइ।
मन मलीन जो धोवई, वाकौ साबुन लाइ ॥९१॥

थोरे थोरे कुच उठी, थोपन की उर सीव।
रूप नगर में देत है, मैन मँदिर की नीव ॥९२॥

करत बदन सुख सदन पै, घूँघट नेत्रन छाह।
नैननि मूँदे पग धरै, भूहन आरे साह ॥९३॥

कुन्दन सी कुन्दीगरनि, कामिनि कठिन कठोर।
और न काहू की सुनै, अपने पिय के सोर ॥९४॥

पगहि मौगरी सी रहै, पैम वज्र वहु खाइ।
रँग रँग अंग अनंग के, करै बनाइ बनाइ ॥९५॥

धुनियाइन धुनि रैनि दिन, धरै सुरति की भाँति।
वाकौ राग न बूझ हो, कहा वजावै ताँति ॥९६॥

काम पराक्रम जब करै, छुवत नरम हो-जाइ।
रोम रोम पिय के बदन, रूई सो लपटाइ ॥९७॥

कोरनि कूर न जानई, पेम नेम के भाव।
बिरही वाके भौन में, ताना तनत भजाइ ॥९८॥

बिरह भार पहुँचै नहीं, तानी बहै न पेम।
जोबन पानी मुख धरै, खैंचे पिय के नैन ॥९९॥

जोवन दुनि पिय दवगरनि, कहत पीय के पास।
मो मन और न भावई, छाँड़ि तिहारी बास ॥१००॥

भर कुपी कुचपीन की, कंचुक में न समाइ।
नव सनेह असनेह भरि, नैन कुपा ढरि जाइ ॥१०१॥

घेरत नगर नगारचनि, बदन रूप तन साजि।
घर घर वाके रूप को, रह्यौ नागरो बाजि ॥१०२॥

पहनै जो बिछुवा-खरी, पिय के सँग अगरात।
रतिपति की नौवत मनो, बाजत आधी रात ॥१०३॥

मन दलमलै दलालनी, रूप अंग के भाइ।
नैन मटकि मुख की चटकि, गाहक रूप दिखाइ ॥१०४॥

लोक लाज कुल काँनि तैं, नहीं सुनावंत बोल।
नैननि सैननि में करै, बिरही जन को मोल ॥१०५॥

निस दिन रहै ठठेरनी, झाजे माजे गात।
मुकता वाके रूप को, थारी पै ठहरात ॥१०६॥

आभूपन वसतर पहिर, चितवत पिय मुख ओर।
मानो गढ़े नितंव कुच, गडुवा ढार कठौर ॥१०७॥

कागद से तन कागदनि, रहै प्रेम के पाय।
रीझी भीजी मैन जल, कागद सी सिथलाइ ॥१०८॥

मानो कागद की गुड़ी, चढ़ी सु प्रेम अकास।
सुरत दूर चित खैंचई, आइ रहै उर पास ॥१०९॥

देखन के मिस मसिकरनि, पुनि भरमसि खिन देत।
चख टौना कछु डारई, सूझै स्याम न सेत ॥११०॥

रूप जोति मुख पै धरै, छिनक मलीन न होत।
कच मानो काजर परै, मुख दीपक की जोति ॥१११॥

बाजदारनी बाज पिय, करै नहीं तन साज।
बिरह पीर तन यौ रहै, जर झकिनी जिमि बाज ॥११२॥

नैन अहेरौ साजि कै, चित पंछी गहि लेत।
बिरही प्रान सिचान को, अधर न चाखन देत ॥११३॥

झिलोदारनी अति जलद, बिरह अगिन कै तेज।
नाक न मोरै सेज पर, अति हाजर महि मेज ॥११४॥

औरन को धर सघन मन, चलै जु घूँघट माहिं।
वाके रंग सुरंग की, जुलोदार पर छाँहि ॥११५॥

सोभा अंग भँगेरनी, सोभित माल गुलाल।
पना पीसि पानी करै, चखन दिखावै लाल ॥११६॥

काहू अधर सुरंग धरि, प्रेम पियालो देत।
कांहू को गति मति सुरत, हरुवैई हरिलेत ॥११७॥

वोजागरनि बजार में, खेलत बाजी प्रेम।
देखत बाको रस रसन, तजत नैन व्रत नेम ॥११८॥

पीवत वाको प्रेम रस, जोई सो बस होइ।
एक खरे घूमत रहै, एक परे मत खोइ ॥११९॥

चीताबानी देखि कै, बिरही रहे लुभाइ।
गाड़ी को चीतो मनो, चलै न अपने पाय ॥१२०॥

अपनी बैसि गरूर ते, गिनै न काहू मित्त।
लाक दिखावत ही हरै, चीता हू को चित्त ॥१२१॥

कठिहारी उर की कठिन, काठपूतरी आहि।
छिनक न पिय संग ते टरै, बिरह फँदै नहिं ताहि ॥१२२॥

करै न काहू को कह्यो, रहे किये हिय साथ।
बिरही को कोमल हियो, क्यों न होइ जिम काठ ॥१२३॥

घासिनि थोरे दिनन-की, बैठी जोबन त्यागि।
थोरे ही बुझ जात है, घास जराई आगि ॥१२४॥

तन पर काहू ना गिनै, अपने पिय के हेत।
हरवर बैडो बैस को, थोरे हे को देत ॥१२५॥

रीझी रहै डफालिनी, अपने पिय के राग।
ना जानै संजोग रस, ना जानै बैराग ॥१२६॥

अनमिल बतियाँ सब करै, नाहीं मलिन सनेह।
डफली बाजै बिरह की, निस दिन वाके गेह ॥१२७॥

बिरहो के उर में गढ़ै, गड़िबारिन को नेह।
शिव बाहन सेवा करै, पावै सिद्धि सनेह ॥१२८॥

पैम पीर वाकी जनौ, कंटकहू न गड़ाइ।
गाड़ी पर बैठे नहीं, नैननि सों गड़ि जाइ ॥१२९॥

बैठी महत सहावतन, धरै जु आपुन अंग।
जोबन मद में गलि चढ़ी, फिरै जु पिय के संग ॥१३०॥

पीत कॉछ कंचुक तियन, बाला गहे कलाव।
जाहि ताहि मारत फिरै, अपने पिय के ताव ॥१३१॥

सरवानी विपरीत रस किय चाहै न डराइ।
दुरै न बिरहा को दुखौ, ऊँट न छाग समाइ॥१३२॥

जाहि ताहि कौ चित हरै, बाँधै पैम कटार।
चित आवत गहि खैंचई, भरि कै गहै मुहार॥१३३॥

नालिबंदनी रैन दिन, रहै सखिन के नाल।
जोवन अङ्ग तुरंग की, बाँधन देइ न नाल॥१३४॥

चौली माँहि चुरावई, चिरवादारनि चित्त।
फेरत वाके गात पर, काम खरहरा नित्त॥१३५॥

सारी निस पिय सँग रहै, प्रेम अङ्ग आधीन।
मूठी माहि दिखावही, बिरही को कटि खीन॥१३६॥

धोबन लुबधी प्रेम की, ना घर रहै न घाट।
देत फिरै घर घर बगर, लुगरा धरै लिलाट॥१३७॥

सुरत अङ्ग मुख मोर कै, राखै अधर मरोरि।
चित्त गदहरा ना हरै, बिन, देखे वा ओर॥१३८॥

चोरत चित्त चमारिनी, रूप रंग के साज।
लेत चलायें चाम के, दिन द्वै जोबन राज॥१३९॥

जाव क्यों न व्रत नेम सब, होहु लाज कुल हानि।
जो वाके संग पोढ़ई, प्रेम अघोरी तानि॥१४०॥

हरी भरी गुन चूहरी, देखत जीव कलंक।
वाके अधर कपोल को, चुवौ परै जिम रंग॥१४१॥

परमलता सी लह लही, धरै पैम संयोग।
कर-गहि गरै लगाइयै, हरै विरह को रोग॥१४२॥

—❀—

बरवै नायिका भेद *

कवित कह्यो दोहा कह्यो, तुलै न छप्पय छंद।
बिरच्यो यही बिचारि कै, यह बरवा रस कंद ॥ १ ॥
वेधक अनियारो बड़ो, समुझै चतुर सुजान।
सुनत जात चित चाव पै, यह बरवै के बान ॥ २ ॥

(मंगलाचरण)

बंदो देवि सरदवा, पद, कर जोरि।
बरनत काव्य बरैवा, लगइ न खोरि ॥ ३ ॥

स्वकीया †

(स्वकीया-लक्षण)

आजवती निसदिन पगी, निज पति के अनुराग।
कहत स्वकीया सीलमय, ताको पति बड़ भाग ॥

(स्वकीया-उदाहरण)

रहत नयन के कोरवा, चितवनि छाय।
चलत ¶ न पग पैजनियाँ, मग ठहराय ‡ ॥ ४ ॥

---

* लक्षण के समस्त दोहे मतिराम कृत रसराज के हैं।

† नायिका तीन प्रकार की कथित है (१) स्वकीया (२) परकीया तथा (३) गणिका। पहिले स्वकीया का वर्णन किया गया है।

¶ यजय ‡ अहटाय

मुग्धा

(मुग्धा लक्षण)

अभिनव जीवन आगमन, जाके तन में होय ।
ताको मुग्धा कहत हैं, कवि कोविद सब कोय ॥

(मुग्धा–उदाहरण)

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार ।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥ ५ ॥
लागेउ आन नवेलिअहिं मनसिज बान ।
उकसन लागु उरुजवा, दिग † तिरछान ॥ ६ ॥

मुग्धा भेद

(अज्ञातयौवना-लक्षण)

निजतन यौवन आगमन, जो नहिं जानत नारि ।
सो अज्ञात सुजोबना, बरनत कवि निरधारि ॥

(अज्ञातयौवना-उदाहरण)

कौन * रोग दो ¶ छतियाँ, उकस्यो ‡ आइ ।
दुखि दुखि उठत करेजवा, लगि जनु लाइ ॥ ७ ॥

(ज्ञातयौवना-लक्षण)

निज तन जौवन आगमन, जानि परत है जाहि ।
कवि-कोविद सब कहत है, ज्ञात जौबना ताहि ॥

---

† दृग * कवन ¶ द्वै दुई ‡ उपजेउ, उकसेउ

(ज्ञातयौवना-उदाहरण *)

औचक आइ जोबनवाँ, मोहि दुख दीन।
छुटिगो संग गोइअवाँ, नहिं भल कीन ॥ ८ ॥

(नवोढ़ा-लक्षण)

मुग्धा जो भय लाज युत, रति न चहे पति संग।
ताहि नवोढ़ा कहत हैं, जे प्रवीन रस रंग ॥

(नवोढ़ा, उदाहरण)

पहिरत चूनि चूनरिया, भूषन भाव।
नैननि देत कजरवा, फूलनि चाव ॥ ९ ॥

(विश्रब्ध नवोढ़ा—लक्षण)

होय नवोढ़ा के कछू, प्रीतम सों परतीत।
सो विश्रब्ध नवोढ़ यो, बरनत कवि रस गीत ॥

(विश्रब्ध नवोढ़ा-उदाहरण)

जंघन जोरत गौरिया, करत कठोर।
छुवन न पाव पियवा, कहुँ कुच कोर ॥ १० ॥

मध्या

(मध्या-लक्षण)

जाके मन में होत है, लज्जा मदन समान।
ताको मध्या कहत हैं, कवि 'मतिराम' सुजान ॥

(मध्या-उदाहरण)

निसदिन चाहत चाहन, श्री ब्रजराज।
लाज जोरावरि है बसि, करत अकाज ॥ ११ ॥

प्रौढ़ा

(प्रौढ़ा-लक्षण)

निज पति सों रस केलि की, सकल कलानि प्रवीन।
तासो पौढ़ा कहत है, जे कविता रस लीन॥

(प्रौढ़ा-उदाहरण)

भोरहि बोल कोइलिया, बढ़वत ताप।
घरी एक घरि अलिया, * रहु चुप चाप॥ १२॥

परकीया

(परकीया-लक्षण)

प्रेम करै पर पुरुष सौ, परकीया सो जान।
दोय भेद ऊढ़ा प्रथम, बहुरि अनूढ़ा जान॥

(परकीया-उदाहरण)

सुनि धुनि कान मुरलिआ, रागन भेद।
गैल-न छाँडत गोरिया, गनत न खेद॥१३॥

(ऊढ़ा-लक्षण)

ब्याही औरै पुरुष सौ, औरै सो रस लीन।
ऊढ़ा तासो कहत हैं, कवि पंडित परवीन॥

(ऊढ़ा-उदाहरण)

निसि दिन सासु नॅनदिआ, मोहि घर घेरु।
सुनन न देत मुरलिया, नाधुन टेरु॥१४॥

---

* घरि घरि एक घरिअवा।

ग्रीषम दहत दवरिया, कुंज कुटीर।
तिमि तिमि तकत तुरुनिअहि, बाढ़त पीर॥

(द्वितीय अनुसयना-लक्षण)

होनहार संकेत को, सोच करै जो नारि।
है अनुसयना दूसरी, कहत सो सुकवि विचारि॥

(द्वितीय अनुसयना-उदाहरण)

धीरज धर किन गोरिआ, करि अनुराग।
जात जहाँ पिय देसवा, धन बर बाग॥२५॥
जनि मरु रोइ दुलहिआ, धरु मन ऊन।
सघन कुंज ससुररिआ, और घर सून॥२६॥

(तृतीय अनुसयना-लक्षण)

प्रीतम गये सहेट को, जाने हेतुहिं पाय।
तृतीया अनुसयना कहीं, हौ न-गई पछताय॥

(तृतीय अनुसयना-उदाहरण)

मितवा करनि पसुरिआ, सुमन सपात।
फिरि फिरि ताकि तरुनिआ, मन पछितात॥२६॥
मित उतते फिरि आवहु, देखि अराम।
मैं न गई असरइया, रह्यो न काम॥२८॥

(मुदिता-लक्षण)

चित चाही सुत चात लखि, मुदित होय जो बाल।
तासो मुदिता कहत हैं, कवि मतिराम रसाल॥

(मुदिता-उदाहरण)

जैहौं कान्ह नेवतवा, भो दुख दून।
बहू करे सुखबरिया, है घर सून॥२९॥

नेवते गई नॅनदिआ, मैके सास।
दुलहिन तोरि खबरिया, औ पिय पास ॥ ३० ॥

(कुलटा-लक्षण)

जो चाहे बहुनायकनि, संग सुरति पर प्रीति।
तासो कुलटा कहत है, लखि ग्रंथन की रीति ॥

(कुलटा-उदाहरण)

जस मदमातिल हथिआ, हुमकत जाय।
चितवति छैल तरुनिआ, मुहु मुसक्याय ॥ ३१ ॥
चितवति ऊँच अटरिया, दाहिन बाम।
लाखत लखत बिदेसिया, ह्वै बस काम ॥ ३२ ॥

गणिका

(गणिका-लक्षण)

धन दे जाके सग मे, रमै रसिक सब कोय।
ग्रन्थन को मति देखि के गनिका जानो सोय ॥

(गणिका-उदाहरण)

लखि लखि धनिक धनिअवा, * बनवति भेख।
रहि गइ हेरि अरसिआ, कजरा नेख † ॥ ३३ ॥

(अन्य संभोग दुःखिता—लक्षण)

निजपति के रति चिन्ह जो, लखै और तिय-देह।
अन्य सुरति दुखिता कहो, करै पेच रिस-तेह ॥

---

* नयकवा † रेख

(अन्य सुरति दुःखिता-उदाहरण)

मैं पठई जेहि कजवा, आइसि साधि ।
छुटि गो सीस जुरबना, दिठ‡ करि बाँधि ॥ ३४ ॥
मो हित ¶ हरवर आवत, भौ पथ खेद ।
रहि रहि लेत उससवा, औ तन स्वेद ॥ ३५ ॥

(प्रेम गर्विता-लक्षण)

निज नायक के प्रेम को, गरव जनावत वाल ।
प्रेम गर्विता कहत है, तासो सुमति रसाल ॥

(प्रेमगर्विता-उदाहरण)

आपुहि देत कजरवा, गूँदत हार ।
चुनि पहिराव चुनरिया, प्रान अधार ॥ ३६ ॥
आरन पाय जवकवा, नाइन दीन ।
तुम्हें अँगोरत गोरिया, न्हान न कीन ॥ ३७ ॥

(रूपगर्विता-लक्षण)

जाको अपने रूप को, अतिही होय गुमान ।
रूप गर्विता कहत हैं, सो मतिराम सुजान ॥

(रूप गर्विता-उदाहरण)

वक्र मलिन विषभैया, औगुन तीन ।
मोहि कहि चंद-वदनिया, पियमति हीन ॥ ३८ ॥
रातुल भयेसि मुगउआ, निरस पखान ।
एहि मधु भरल अधरवा, करत समान ॥ ३९ ॥

---

‡ कस ¶ सखि इत हरवर आवत

दस विधि नायिका ¶

(१ प्रोपितपतिका-लक्षण)

जाको पिय परदेस में, विरह-विकल तिय होय ।
प्रोपितपतिका नायिका, ताहि कहत सब कोय ॥

(मुग्धा-प्रोपितपतिका-उदाहरण)

तैं अब जाइ बेइलियाँ, जरि बरि मूल ।
बिन प्रिय सूल करैजवा, लखि तव फूल ॥४०॥

(मध्या-प्रोपितपतिका-उदाहरण)

का तुम मंजु † मलतिया, ‡ झलरति जाति ।
पिय बिन मन हुकरैया, ‡ मोहि न सुहाति ॥४१॥

(प्रौढ़ा-प्रोपितपतिका-उदाहरण)

का सन कहउँ सँदेसवा, पिय परदेसु ।
रातुल हैं नहिं फूले, उहि बिन टेसु ॥४२॥

(२ खंडिता लक्षण)

पिय तन औरे नारि के, रति के चीन्ह निहारि ।
दुखियत होय सो खंडिता, बरनत सुकवि विचारि ॥

(मुग्धा खंडिता-उदाहरण)

सखि सिख सीखि नवेलिया, कीन्हेसि मान ।
पिय लखि कोप-भवनवा, ठानेसि ठान ॥४३॥

¶ (१) प्रोषितपतिका (२) खंडिता (३) कलहांतरिता (४) विप्रलब्धा (५) उत्कंठिता (६) वासकसज्जा (७) स्वाधीनपतिका (८) अभिसारिका (९) प्रवत्स्यत्पतिका (१०) आगतपतिका ।

† लतिअवा : का तुम जुगुल तिरिअवा । ‡ टुड़कइयाँ, अटरिया ।

सीस नवाइ नवेलिया निचवा जोइ।
छिति खनि छोर छिगुनिआँ सुसुकन रोई ॥४४॥

(मध्या–खंडिता–उदाहरण)

ठकि गौ पीय पलँगिआ आलस पाइ।
पौढहु जाइ बरोटवा सेज बिछाइ ॥४५॥
पोछहु अनख कजरवा जावक भाल।
उपट्यौ पीतम छतिया बिन गुन माल ॥४६॥

(प्रौढ़ा–खंडिता–उदाहरण)

पिय आवत अँगनइआ, उठिकै लीन्ह।
बिहँसत चतुर तिरिअवा, बैठन दीन्ह ॥४७॥

(परकीया–खंडिता–उदाहरण)

जेहि लगि सजन सगेइया* छुट घर बार।
अपने होत पिअरवा, सोच परार ॥४८॥
पौढ़हु पीय पलँगिआ मीड़हु पाय।
रैन जगे कर निदिआ सब मिटि जाय ॥४९॥

(सामान्या–खंडिता उदाहरण)

मितवा ओठ कजरवा, जावक भाल।
लिहेसि काढ़ि बरिअइया, तकि मनि-माल ॥५०॥

(३ कलहांतरिता–लक्षण)

कह्यो न माने कंत को, फिर पाछे पछताइ।
कलहान्तरिता नायिका, ताहि कहत कविराइ ॥

---

* सनेही।

(मुग्धा–कलहान्तरिता–उदाहरण)

आइहु अबहि गवनवा, तुरतहि मान ।
अब रस लागि गोरिअवा, मन पछतान ॥ ५१ ॥

(मध्या–कलहान्तरिता–उदाहरण)

मैं मतिमंद तिरिअवा, परलिउ भोरि ।
ते नहिं कन्त मनावत, तेहि कछु खोरि ॥ ५२ ॥

(प्रौढ़ा–कलहान्तरिता–उदाहरण)

थकिगौ करि मनुहरिआ, फिरिगौ पीव ।
मैं उठि तुरत न लाएउ, हिमकर हीव ॥ ५३ ॥

(परकीया–कलहान्तरिता–उदाहरण)

जेहि लगि कीन विरोधवा, ननद जठाँनि ।
लीए न लाइ करेजवा, तेहि हित जानि ॥ ५४ ॥

(सामान्या–कलहान्तरिता–उदाहरण)

जिहिं दीने बहु बेरवा, मोहि मनि-माल ।
तेहि से रूठिउ सखिया, फिरगौ लाल ॥ ५५ ॥

(४ विप्रलब्धा लक्षण)

आपु लाइ संकेत में, मिलै न जाकौ पीउ ।
ताहि विप्रलब्धा कहत, सोच करत अति जीव ॥

(मुग्धा विप्रलब्धा–उदाहरण)

मिलेउ न कन्त सहेटवा, लखेउ डेराइ ।
धनिया कमल–बदनिया, गौ कुँमिलाइ ॥ ५६ ॥

(मध्या–विप्रलब्धा–उदाहरण)

दीख न केलि भवनवा, नन्दकुमार ।
लै लै ऊँचि उससवा, ह्वै विकरार ॥ ५७ ॥

(प्रौढ़ा–विप्रलब्धा–उदाहरण)

देख न कन्त सहेटवा, भी दुखि पूरि ।
रोवत नैन कजरवा, होइ गौ दूरि ॥५८॥

(परकीया–विप्रलब्धा–उदाहरण)

बैरिनि सँह अभिसरवा, अति दुखदानि ।
तापर मिलेउ न मितवा, भो पछतानि ॥५८॥

(सामान्या–विप्रलब्धा)

करिकै सोरह सिंगरवा, अतर लगाइ ।
मिलेउ न लाल सहेटवा, फिरि पछिताइ ॥६०॥

(५ उत्कंठिता–लक्षण)

आपु जाइ सकेत मे, पिय नहि आयो होइ ।
ताकौ मन चिन्ता करै, उत्का जानौ सोइ ॥

(मुग्धा–उत्कंठिता–उदाहरण)

गौ जुग जाम जमुनिआ, पिय नहिं आइ ।
राखेहु कौन सवतिआ दहु * विलमाइ ॥६१॥

(मध्या–उत्कंठिता–उदाहरण)

जोहति परी पलकिया, पियकी मार ।
वेचेउ चतुर तिरियवा, केहिके हार ॥ ६२ ॥

(प्रौढा–उत्कंठिता–उदाहरण)

पिय-पथ हेरति गोरिया, भो भिनुसार ।
चलहु न करहि तिरिअवा, तौं† इतवार ॥६३॥

(परकीया–उत्कंठिता–उदाहरण)

उठ उठ जात खिरकिया, जोहन बाट ।
कत वह आइहि मितवा, सूनी खाट ॥६४॥

---

* धौ † तुव

(सामान्या–उत्कंठिता–उदाहरण)

कठिन नींद भिनुसरवा, आलस पाइ।
धन दै मूरख मितवा, रहल लोभाइ ॥६५॥

(६ वासकसज्जा–लक्षण)

ऐहैं प्रीतम आज ऐ, निहचै जानैं बाम।
साजै सेज सिगार सुख, वासकसज्जा नाम ॥

(मुग्धा–वासकसज्जा–उदाहरण)

हरुवे गवनि नवेलिअहि, दीठि बजाइ।
पौढ़ी जाइ पलँगिया, सेज बिछाइ ॥६६॥

(मध्या–वासकसज्जा–उदाहरण)

सेज बिछाय पलँगिया, अँग सिंगार।
चौंकत चितै तरुनिआ, दहु कै बार ॥६७॥

(प्रौढ़ा-वासकसज्जा–उदाहरण)

हँसि हँसि हेरि अरसिया सहज सिंगार।
उतरत चढ़त नवेलियहि, तिय * कै बार ॥६८॥

(परकीया–वासकसज्जा–उदाहरण)

सोवत सब गुरु लोगवा, जानेउ बाल।
दीन्हेस खोलि खिरकिया, उठ के हाल ॥६९॥

(सामान्या–वासकसज्जा–उदाहरण)

कीन्हेसि सबै सिंगरवा, चातुर बाल।
ऐहै प्रान पियरवा, लै मनि-माल ॥७०॥

---

* पिय।

(७ स्वाधीनपतिका नायिका-लक्षण)

सदा रूप गुन रीझि पिय, जाके रहै अधीन।
स्वाधिनपतिका नायका, ताहि कहत परवीन॥

(मुग्धा-स्वाधीनपतिका-उदाहरण)

आपुहि देत जवकवा, गहि गहि पाँय।
आपु देत मोहि पिअवा, पान खवाय॥७१॥

(मध्या-स्वाधीनपतिका-उदाहरण)

प्रीतम करत पियरवा, कहल न जाति।
रहत गढ़ावत सोनवा, यहै सिरात॥७२॥

(प्रौढ़ा-स्वाधीनपतिका-उदाहरण)

मैं अरु मोर पियरवा, जस जल मीन।
बिछुरत तजत पिरनवाँ, रहत अधीन॥७३॥

(परकीया-स्वाधीनपतिका-उदाहरण)

भौ जुग नैन चकोरवा, पिय-मुखचंद।
जानति है तिय अपनै, मोहि सुखकन्द॥७४॥

(सामान्या-स्वाधीनपतिका-उदाहरण)

लै हीरन के हरवा, मोतिक माल।
मोहि रहत पहिरावत, बसि ह्वै लाल॥७५॥

(८ अभिसारिका-लक्षण)

पियहि बुलावै आपु कै, पिय पै आपुहि जाय।
ताहि कहत अभिसारिका, जे प्रवीन कविराय॥

(मुग्धा-अभिसारिका-उदाहरण)

चली लिवाइ नवेलिअहि, सखि सब संग।
जस हुलसत गो गोदवा, मत्त मतंग॥७६॥

(मध्या-अभिसारिका-उदाहरण)

पहिरे लाल अछुअवा, तिय गज पाय।
चढ़े नेह हथिअहवा, हुलसत जाय॥ ७७॥

(प्रौढ़ा-अभिसारिका-उदाहरण)

चली रइनि अँधियरया, साहस गाढ़ि।
पायन केरि कँगनिआ, डारेसि काढ़ि॥ ७८॥

(परकीया-अभिसारिका-उदाहरण)

नीलमनिन के हरवा, नील सिंगार।
किए रइनि अँधिअरिआ, धनि अभिसार॥ ७९॥

(शुक्लाभिसारिका-उदाहरण)

सेत कुसम कै हरुवा, भूषन सेत।
चली रैनि उजिअरिया, पिय के हेत॥ ८०॥

(दिवाभिसारिका-उदाहरण)

पहरि बसन जरितरिया, पिय के होत।
चली जेठ दुपहरिया, मिलि रवि-जोत॥ ८१॥

(सामान्या-अभिसारिका-उदाहरण)

धन हित कीन्ह सिंगरवा, चातुर बाल।
चली संग लै चैरिया, जहवाँ लाल॥ ८२॥

(९ प्रवत्स्यत्प्रेयसी-लक्षण)

होनहार पिय-बिरह के, बिकल होइ जो बाल।
ताहि प्रवच्छति प्रेयसी, बरनत बुद्धि विसाल॥

(मुग्धा-प्रवत्स्यतिपतिका-उदाहरण)

परिगौ कानन सखिया, पियकै गौन।
वैठी कनक-पलँगिया, होइके मौन॥ ८३॥

(मध्या-प्रवत्स्यतिपतिका—उदाहरण)

सुठि सुकुमार तरुनिया, सुनि पिय गौन ।
लाजनि पौढ़ि ओवरया, ह्वै कै मौ न ॥८४॥

(प्रौढ़ा-प्रवत्स्यतिपतिका—उदाहरण)

बन घन फूलि टेसुइया, बगिअन बेलि ।
तब पिय चलेउ बिदेसवा, फागुन फैलि ॥ ८५ ॥

(परकीया-प्रवत्स्यतिपतिका—उदाहरण)

मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि ।
तिय की सुरिति गगरिया, रहि मग लागि ॥ ८६ ॥

(सामान्या-प्रवत्स्यतिपतिका—उदाहरण)

प्रीतम इक सुमिरिनियाँ, मोहि दै जाहु ।
जेहि जपि तोर बिरहवा, करौं निबाहु ॥ ८७ ॥

(१० आगतपतिका—लक्षण)

जा तिय के परदेस तें, आवै पति मतिराम ।
ताहि कहत कवि लोग हैं, आगतपतिका नाम ॥

(मुग्धा-आगतपतिका—उदाहरण)

बहुत दिवस पै पियवा, आएहु आजु ।
पुलकित नवल बधुइआ, करु गृह-काजु ॥ ८८ ॥

(मध्या-आगतपतिका—उदाहरण)

पियवा पौरि दुअरवा, उठि किन देखु ।
दुरलभ पाइ बिदेसआ, जिय के लेखु ॥ ८९ ॥

(प्रौढ़ा-आगतपतिका—उदाहरण)

पावन प्रान-पियरवा, हेरेउ आइ ।
तलफत मीन तिरिअवा, जिमि जल पाइ ॥ ९० ॥

(परकीया-आगतपतिका–उदाहरण)

पूछत चली खबरिया, मितवा तीर।
नैहर खोज तिरिअवा, पहिरि सुचीर ॥९१॥

(सामान्या-आगतपतिका–उदाहरण)

तबलगि मिटै न मितवा, तन की पीर ॥
जौलगि पहिरि न हरवा, जटिल सुहीर ॥९२॥

त्रिविध नायिका *

(उत्तमा–लक्षर्ण)

पिय हित कै अनहित करै, आपु करै हित नारि।
ताहि उत्तमा नायिका, कविजन कहत विचारि॥

(उत्तमा–उदाहरण)

लखि अपराध पियरवा, नहिं रिसि कीन्ह।
बिहँसत चँदन-चउकिया, बैठन दीन्ह ॥९३॥

(मध्यमा–लक्षण)

पिय के हित सों हित करै, अनहित कीन्हे मान।
ताहि मध्यमा कहत है, कवि मतिराम सुजान॥

(मध्यमा-उदाहरण)

विनगुन पिय उर हरवा, उपरेउ हेरि।
चुप ह्वै चित्र-पुतरिया, रहि चख फेरि ॥९४॥

(मध्यमा-लक्षण)

पियसों हित हू के किए, करै मान जो बाल।
ताकों अधमा कहत है, कवि मतिराम रसाल॥

* (१) उत्तमा (२) मध्यमा (३) अधमा।

(अधमा-उदाहरण)

बार बार गुन मनवा, जनि करु नारि ।
मानिक औ गज-मोतिया, जो लगि वारि ॥९५॥

नायक

(नायक-लक्षण)

तरुन सुबन सुन्दर सुकुल, कामकला परवीन ।
नायक यौं 'मतिराम' कहि, कवित गीत रसलीन ॥

(नायक-उदाहरण)

सुन्दर चतुर धनिअवा, जातिउ ऊँच ।
केलि-कला-परबिनवा, सील-समूच ॥९६॥

(त्रिविध नायक-भेद)

पति उपपति वेसिकवा, त्रिविध बखान ।
विधिसों ब्याहो गुरुजन, पतिसो जान ॥९७॥

(पति-उदाहरण)

लैके सुघर खुरुपिया, पिय के साथ ।
छपए एक छतरिआ, बरखत पाथ ॥९८॥

(पति-भेद)

चारि भांतिसों बरनिए, अधम कहत अनुकूल ।
दच्छिन औ सठ धृष्ट कहि, रस सिगार को मूल ॥

(अनुकूल-लक्षण)

सदा आपुनी नारिसो, जासों अति ही प्रीति ।
परनारी सों विमुख जो, सो अनुकूल की रीति ॥

(अनुकूल–उदाहरण)

करत नहीं अपरधवा, सपनेहुँ पीव।
मान करै-की सधवा, रहि गइ जीव * ॥९९॥

(दक्षिण–लक्षण)

एक भाँति सब तिअनिसो, जाको रहै सनेह।
सो दच्छिन मतिराम कहि, बरनत है मतिगेह ॥

(दक्षिण–उदाहरण)

सब मिलि करै निहोरवा, हम कह देह।
गुहि-गुहि चंपक टँडिआ, उचइ सो लेह ‡ ॥१००॥

(धृष्ट–लक्षण)

करै दोय निरसंक जो, डरै न तिय को मान।
लाज धरै मन मे नहीं, नायक धृष्ट निदान ॥

(धृष्ट–उदाहरण)

जहँ जागेउ सब रैनियाँ, तहवाँ जाउ।
जोरि नैन निरलजवा, कत मुसकाउ ॥१०१॥

(शठ–लक्षण)

प्रिय बोले अप्रिय करै, निपट कपटयुत होइ।
सठ नायक तासो कहै, कवि कोविद सब कोइ ॥

(शठ–उदाहरण)

छूट्यौ लाज गरिअवा, औ कुल-कानि।
करत रोज अपरधवा, परिगौ वानि ॥१०२॥

---

* मान करन की बिरियाँ, रहि गई हीय।

‡ चुन चुन चंपक चुरिया, उच से लेहु ॥

(उपपति तथा वैसिक-लक्षण)

जो परनारी को रसिक, उपपति ताकों जानि।
प्रीतम सो गनिकान के, वैसिक ताहि बखानि॥

(उपपति-उदाहरण)

झांकि झरोखे गोरिया, अँखियन जोरि।
फिर चितवति चित मितवा, करत निहोरि॥१०३॥

(वैसिक-उदाहरण)

लटकी नील जुलुफिआ, बनसी भाइ।
मो मन बार बधुइआ, मीन बझाइ॥१०४॥

(प्रोषित नायक-लक्षण)

नायक होय विदेस में, जो वियोग अकुलाइ।
प्रोषित तासों कहत हैं, जे प्रवीन कविराइ॥

(प्रोषित नायक-उदाहरण)

करबेउ ऊँच अटरिया, तिय सँग केलि।
कबधौं पहिरि गजरवा, हार चमेलि॥१०५॥

(मानी नायक-लक्षण)

करत नायिका सो कछू, नायक जब अभिमान।
मानी तासो कहत हैं, कवि कोविद करि गान॥

(मानी नायक-उदाहरण)

अब न जनम भर सखिया, ताकौं वोहि।
ऐंठत गौ अभिमनवा, तजि के मोहि॥१०६॥

(वचन-चतुर नायक-लक्षण)

वचनन मे जो करत है, चतुराई मतिमान।
वचन चतुर नायक सरस, लीजै जानि सुजान॥

(बचन-चतुर नायक—उदाहरण)

सघन कुंज अगरइया, सीतल छाहिं।
झगरत आइ कोइलिया, फिर उड़ि जाहि॥ १०७॥

(क्रिया-चतुर नायक—लक्षण)

करै क्रिया सो चातुरी, नायक जो रसलीन।
चतुर-क्रिया तासों कहत, कवि मतिराम प्रवीन॥

(क्रिया-चतुर नायक—उदाहरण)

खेलत जानेसि ढोलिया, नंदकिसोर।
छुइ वृषभान-कुमरिआ, भैगा चोर॥ १०८॥

दर्शन

दरसन आलंबनहि मे, कवि 'मतिराम' बखानि।
श्रवन स्वप्न पुनि चित्र त्यो, पुनि परतच्छ बखानि॥

(श्रवण—दर्शन)

आएउ मीत बिदेसिया, सुनु सखि तोर।
उठि किन करसि सिंगरवा, सुनि सिख मोर॥ १०९।

(स्वप्न—दर्शन)

पीतम मिलेउ सपनवाँ, भौ सुख-खानि।
जाइ जगाएउ चेरिआ, भौ दुखदानि॥ ११०॥

(चित्र—दर्शन)

पिय-मूरति चितसरिया, देखति बाल।
बितवत औध-बसरवा जपि-जपि माल॥ १११॥

(साक्षात्—दर्शन)

बिरहिन और बिदेसिया, भौ इक ठोर।
पिय-मुख हेरि तिरिअवा, चन्द्र-चकोर॥ ११२॥

सखी तथा सखीजन-कर्म

जा तिय सो नहिं नायिका, कछू छिपावति बात।
तासों बरनत सखि कही, सब कवित्त-अवदात ॥
मंडन औ शिक्षा करन, उपालंभ परिहास।
काज सखी को जानिए, औरो बुद्धि बिलास ॥

(मंडन—उदाहरण)

सखियन कीन्ह सिंगरवा, रचि बहु भाँति।
हेरति नैन अरसिया, मुहुँ मुसुकाति ॥ ११३ ॥

(शिक्षा—उदाहरण)

थके बइठि गोड़बरिआ, मींड़हु पाउ।
पिय तन पेखि गरमिया, बिजन डुलाउ ॥ ११४ ॥

(उपालंभ-उदाहरण)

चुप ह्वै रहे सँदेसवा, सुनि मुसुकाय।
पिय निज हाथ बिरवना, दीन्ह पठाय ॥ ११५ ॥

(परिहास—उदाहरण)

बिहँसत भँउह चढ़ाए, धनुष मनोज।
लावत उर उपटनवाँ, ऐंठि उरोज ॥ ११६ ॥

॥ दोहा ॥

लच्छन दोहा जानिए, उदाहरन बरवान।
दूनों के संग्रह भए, रस सिंगार निर्मान ॥ ११७ ॥
एह नवीन संग्रह सुनो, जो देखे चित देय।
विविध नायिका नायकनि, जानि भली विधि लेय ॥ ११८ ॥

बरवै *

बन्दहुँ विघन-बिनासन, ऋधि-सिधि-ईस ।
निर्मलबुद्धि प्रकासन, सिसुससि-सीस ॥ १ ॥

सुमिरहु मन दृढ़ करिकै, नन्दकुमार ।
जो वृषभान-कुँवरि कै, प्रान-अधार ॥ २ ॥

भजहु चराचर-नायक, सूरजदेव ।
दीनजनन-सुखदायक, त्यारन ऐव ॥ ३ ॥

ध्यावहुँ सोच-विमोचन, गिरिजा-ईस ।
नागर भरन त्रिलोचन, सुरसरि सीस ॥ ४ ॥

ध्यावहुँ विपद-विदारन, सुवन समीर ।
खल-दानव-वन-जारन, प्रिय रघुबीर ॥ ५ ॥

पुन पुन बन्दहुँ गुरु के, पद-जलजात ।
जिहि प्रताप तैं मनके, तिमिर बिलात ॥ ६ ॥

करत घुमड़ि घन-धुरवा, मुरवा सोर ।
लगि रह विकसि अकुँरवा, नन्दकिसोर ॥ ७ ॥

बरसत मेघ चहूँ दिसि, मूसरधार ।
सावन आवन कीजत, नन्दकुमार ॥ ८ ॥

अजहुँ न आये सुधि कै, सखि घनश्याम ।
राख लिये कहुँ बसिकै, काहू बाम ॥ ९ ॥

कवलौं रहि है सजनी, मन में धीर ।
सावनहूँ नहि आवन, कित बलवीर ॥१०॥

---

* इसके आरंभ के १०१ बरवे एक प्राचीन प्रति के अनुसार दिये हैं ।

घन घुमड़े चहुँ ओरन, चमकत बीज।
पिय प्यारी मिलि झूलत, सावन-तीज ॥११॥

पीव पीव कहि चातक, सठ अहरात।
करत बिरहनी तिय के, हिय उतपात ॥१२॥

सावन आवन कहिगे, स्याम सुजान।
अजहुँ न आये सजनी, तरफत प्रान ॥१३॥

मोहन लेउ मया करि, मो सुधि आय।
तुम बिन मीत अहर-निसि, तरफत जाय ॥१४॥

बढ़त जात चित दिन-दिन, चौगुन चाब।
मनमोहन तैं मिलबौ, सखि कहँ दाब ॥१५॥

मनमोहन बिन देखें, दिन न सुहाय।
गुन न भूलिहौ सजनी, तनक मिलाय ॥१६॥

उमड़ि-उमड़ि घन घुमड़े, दिसि बिदिसान।
सावन दिन मनभावन, करत पयान ॥१७॥

समुझति सुमुखि सयानी, बादर झूम।
बिरहन के हिय भभकत, तिनकी धूम ॥१८॥

उलहे नये अंकुरवा, बिन बलबीर।
मानहु मदन महिपके, बिनपर तीर ॥१९॥

सुगमहि गातहि गारन, जारन देह।
अगम महा अतिपारन, सुघर सनेह ॥२०॥

मनमोहन तुव मूरति, बेरिझवार।
बिनि पियान मुहि बनिहै, सकल बिचार ॥२१॥

झूमि-झूमि चहुँ ओरन, बरसत मेह।
त्यों त्यों पिय बिन सजनी, तरसत देह ॥२२॥

झूँठी झूँठी सौहैं, हरि नित खात।
फिर जब मिलत मरू के, उतर बतात ॥२३॥

डोलत त्रिबिध मरुतवा, सुखद सुढार।
हरि बिन लागत सजनी, जिमि तरवार ॥२४॥

कहियो पथिक सँदिसवा, गहि के पाय।
मोहन तुम बिन तनकहु, रह्यौ न जाय ॥२५॥

जबते आयौ सजनी, मास असाढ़।
जानी सखि वा तिय के, हिय की गाढ़॥२६॥

मनमोहन बिन तिय के, हिय दुख बाढ़।
आये नन्द दिठनवा, लगत असाढ़ ॥२७॥

वेद पुरान बखानत, अधम उधार।
कहि कारण करुणानिधि, करत बिचार ॥२८॥

लगत असाढ़ कहत हो, चलन किशोर।
घन घुमड़े चहुँ ओरन, नाचत मोर ॥२९॥

लखि पावस ऋतु सजनी, पिय परदेस।
गहन लग्यौ अबलनि पै, धनुष सुरेस ॥३०॥

बिरह बढ़्यौ सखि अंगन, बढ़्यो चवाव।
कर्‍यौ निठुर नँदनन्दन, कौन कुदाव ? ॥३१॥

भज्यो कितौ न जनम भरि, कितनी जाग।
संग रहत या तन की, छाँही भाग ॥३२॥

भज रे मन नँदनन्दन, बिपति-बिदार।
गोपीजन-मन-रंजन, परम उदार ॥३३॥

जदपि वसत है सजनी, लाखन लोग।
हरि बिन कित यह चितको, सुख संजोग ॥३४॥

जदपि भई जल पूरित, छितव सुआस ।
स्वाँत बूँद बिन चातक, मरत-पियास ॥३५॥

देखन ही को निस दिन, तरफत देह ।
यही होत मधुसूदन, पूरन नेह ? ॥३६॥

कबते देखत सजनी, बरसत मेह ।
गनत न चढ़े अटनपै, सने सनेह ॥३७॥

बिरह बिथा ते लखियत, मरिबौ मूरि ।
जो नहि मिलिहै मोहन, जीवन मूरि ॥३८॥

ऊधौ भलौ न कहनौ, कछु पर पूठि ।
साँचे ते भे झूठे, साँची झूठि ॥३९॥

भादों निस अँधयरिया, घर अँधयार ।
बिसरयो सुघर बटोही, शिव आगार ॥४०॥

हौं लखिहों री सजनी, चौथ मयंक ।
देखों केहि बिधि हरिसों, लगै कलंक ॥४१॥

इन बातन कछु होत-न, कहो हजार ।
सब ही तैं हँसि बोलत, नन्दकुमार ॥४२॥

कहा छलत हो ऊधौ, दै परतीति ।
सपनेहू नहिं बिसरै, मोहनि मीति ॥४३॥

बन उपवन गिरि सरिता, जिती-कठोर ।
लगत देह से बिछुरे, नंद किसोर ॥४४॥

भलि भलि दरसन दीनहु, सब निसि-टारि ।
कैसे आवन कीनहु, हौ बलिहारि ॥४५॥

आदिहि-ते सब छुटगो, जग ब्यौहार ।
ऊधौ अब न तिनौं भरि, रही उधार ॥४६॥

घेर रह्यौ दिन रतियाँ, बिरह बलाय।
मोहन की यह बतियाँ, ऊधो हाय! ॥ ४७ ॥

नर नारी मतवारी, अचरज नाहिं।
होत विटपहू नागे, फागुन माहिं ॥ ४८ ॥

सहज हँसोई बाते, होत चवाइ।
मोहन कों तन सजनी, दै समुझाइ ॥ ४९ ॥

ज्यों चौरासी लखि में, मानुष देह।
त्योंही दुर्लभ जग में, सहज सनेह ॥ ५० ॥

मानुप तन अति दुर्लभ, सहजहि पाय।
हरि-भजि कर सत संगति, कह्यौ जताय ॥ ५१ ॥

अति अद्भुत छबि सागर, मोहन गात।
देखत ही सखि बूड़त, दृग-जलजात ॥ ५२ ॥

निरमोही अति झूँठौ, साँवर गात।
चुभ्यौ रहत चित कौधौं, जानि-न जात ॥ ५३ ॥

बिन देखे कल नाहिन, यह अँखियाँन।
पल पल कटत कलप सों, अहो सुजान ॥ ५४ ॥

जब तब मोहन झूँठी, सौहें खात।
इन बातन ही प्यारे, चतुर कहात ॥ ५५ ॥

ब्रज-बासिन के मोहन, जीवन प्रान।
ऊधौ यह संदिसवा, अकह कहान ॥ ५६ ॥

मोहि मीत बिन देखे, छिन न सुहात।
पल पल भरि भरि उझलत, दृग जलजात ॥ ५७ ॥

जबते बिछुरे मितवा, कहु कस चैन।
रहत भर्यौ हिय साँसन, आँसुन नैन ॥ ५८ ॥

कैसे जावत कोऊ, दूरि वसाय।
पल अन्तरहू सजनी, रह्यो न जाय॥ ५९॥

जान कहत हो ऊधौ, अवधि बताइ।
अवधि अवधि-लों दुस्तर, परत लखाइ॥ ६०॥

मिलनि न बनि है भाखत, इन इक टूक।
भये सुनत ही हिय के, अगनित टूक॥ ६१॥

गये हेरि हरि सजनी, बिहँसि कछूक।
तबते लगनि अगनि की, उठत भबूक॥ ६२॥

मनमोहन की सजनी, हँसि बतरान।
हिय कठोर कीजत पै, खटकत आन॥ ६३॥

होरी पूजत सजनी, जुर नर नारि।
हरि-बिन जानहु जिय में, दई दवारि॥ ६४॥

दिस्न बिदसाँन करत ज्यों, कोयल कूक।
चतुर उठत है त्यों त्यों, हिय में हूक॥ ६५॥

जबते मोहन बिछुरे, कछु सुधि नाहिं।
रहे प्रान परि पलकनि, दृग मग माहि॥ ६६॥

उझकि उझकि चित दिन दिन, हेरत द्वार।
जबते बिछुरे सजनी, नन्दकुमार॥ ६७॥

जक न परत बिन हेरे, सखिन सरोस।
हरि न मिलत बसि नेरे, यह अफसोस॥ ६८॥

चतुर मया कर मिलि हौं, तुरतहिं आय।
बिन देखे निस वासर, तरफत जाय॥ ६९॥

तुम सब भाँतिन चतुरे, यह कल बात।
होरी से त्यौहारन, पीहर जात॥ ७०॥

और कहाँ हरि कहिये, धनि यह नेह।
देखन ही को निसदिन, तरफत देह ॥ ७१ ॥

जबते बिछुरे मोहन, भूख न प्यास।
बेरि बेरि बढ़ि आवत, बड़े उसास ॥ ७२ ॥

अन्तर गत हिय बेधत, छेदत प्रान।
विष सम परम सबन तें; लोचन बान ॥ ७३ ॥

गली अँधेरी मिलकै, रहि चुप चाप।
बरजोरी मनमोहन, करत मिलाप ॥ ७४ ॥

सास ननद गुरु पुरजन, रहे रिसाय।
मोहन हू अस निसरे, हे सखि हाय! ॥ ७५ ॥

उन बिन कौन निबाहै, हित की लाज।
ऊधो तुमहु कहियो, धनि बृजराज! ॥ ७६ ॥

जिहि के लिये जगते में, बजै निसान।
तिहिं-ते करे अबोलन, कौन सयान ॥ ७७ ॥

रे मन भज निसबासर, श्री बलवीर।
जो बिन जाँचे टारत, जन की पीर ॥ ७८ ॥

बिरहिन को सब भाखत, अब जनि रोय।
पीर पराई जानै, तब कहु कोय ॥ ७९ ॥

सबै कहत हरि बिछुरे, उर धर धीर।
बौरी बाँझ न जानै, ब्यावर पीर ॥ ८० ॥

लखि मोहन की बंसी, बंसी जान।
लागत मधुर प्रथम पै, बेधत प्रान ॥ ८१ ॥

कोटि जतनहु फिरत न, बिधि की बात।
चकवा पिंजरे हू सुनि, विमुख बसात ॥ ८२ ॥

देखि ऊजरी पूछत, बिन ही चाह।
कितने दामन बेचत, मैदा साह॥ ८३॥

कहा कान्ह ते कहनौ, सब जग साखि।
कौन होत काहू के, कुबरी राखि॥ ८४॥

तैं चंचल चित हरि कौ, लियौ चुराइ।
याहीं तें दुचती सी, परत लखाइ॥ ८५॥

मी गुज़रद ईं दिलरा, वे दिलदार।
इक इक साअत हमचूँ, साल हज़ार॥ ८६॥

नव नागर पद परसी, फूलत जौन।
मेटत सोक असोकसु, अचरज कौन॥ ८७॥

समुझि मधुप कोकिल की, यह रसरीति।
सुनहु श्याम की सजनी, का परतीत॥ ८८॥

नृप जोगी सब जानत, होत बयार।
संदेसन तौ राखत, हरि ब्यौहार॥ ८९॥

मोहन जीवन प्यारे, कस हित कीन।
दरसन ही कों तरफत, ये दृगमीन॥ ९०॥

भजि मन राम सियापति, रघुकुल ईस।
दीनबन्धु दुख टारन, कौसलधीस॥ ९१॥

भजि नर हर नारायन, तजि बकवाद।
प्रगट खंभ ते राख्यौ, जिन प्रहलाद॥ ९२॥

गोरज धन-बिचि राखत, श्रीव्रजचन्द।
तिय दामनि जिमि हेरत, प्रभा अमन्द॥ ९३॥

ग़र्क़ अज मैं शुद आलम, चन्द हज़ार।
बे दिलदार कै गीरद, दिलम क़रार॥ ९४॥

दिलबर ज़द बर जिगरम, तीर निगाह ।
तपीदा जाँ मी आयद, हरदम आह ।।९५।।

कै गोयम अहवालम, पेश निगार ।
तनहा नजर न आयद, दिल लाचार ।।९६।।

लोग लुगाई हिल मिल, खेलत फाग ।
परयौ उड़ावन मोकौं, सब दिन काग ।।९७।।

मो जिय कौरी सिगरी, ननद जिठानि ।
भई स्यामसों तबतें, तनक पिछानि ।।९८।।

होत बिकल अनलेखै, सुघर कहाय ।
को सुख पावत सजनी, नेह लगाय ।।९९।।

अहो सुधाधर प्यारे, नेह निचोर ।
देखन ही कों तरसै, नैन चकोर ।।१००।।

ऑखिन देखत सबही, कहत सुधारि ।
पै जग सॉची प्रीत न, चातक टारि ।।१०१।।

पथिक आय पनघटवा, कहत पियाव ।
पैया परों ननदिया, फेरि कहाव ।।१०२।।

या झर में घर घर में, मदन हिलोर ।
पिय नहिं अपने कर में, करमें खोर ।।१०३।।

---

(१०२) यह बरवा प० रामनरेश त्रिपाठी ने कविताकोमुदी में रहीम के नाम से दिया है ।

(१०३) नवीन-कृत प्रबोध रस सुधासागर में रहीम कृत प्रोषित-पत्रिका का उदाहरण ।

बालम अस मन मिलयउँ, जस पय पानि।
हँसनि भइल सवतिया, लइ बिलगानि ॥१०४॥

ढीलि आँख जल अँचवत, तरुनि सुभाय।
धरि खसकाइ घइलना, मुरि मुसुकाय ॥१०५॥

०४) पं० नकछेदी तिवारी द्वारा संपादित बरवै नायिकाभेद में यह बरवै नहीं दिया है और शिवसिंहसरोज में इसे यशोदानंदन का लिखा है।

मदनाष्टक

शरद् निशि निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन वन निकुंजे कान्ह बंशी बजाई॥
रति, पति, सुत, निद्रा, साइयाँ छोड़ भागीं।
मदन-शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥ १॥

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन-वाला चाँदनी में खड़ा था॥
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला॥ २॥

दृग छकित छबीली छेलरा की छरी थी।
मणि-जटित रसीली माधुरी मूँदरी थी॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब देखा।
कहि न सकी जैसा श्याम का हस्त देखा॥ ३॥
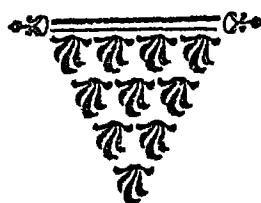
कठिन कुटिल कारी देख दिलदार जुल्फें।
अलि कलित बिहारी† आपने जी की कुलफें॥
सकल शशि-कला को रोशनी-हीन लेखौं।
अहह! ब्रजलला को किस तरह फेर देखौं॥ ४॥

जरद् बसन-वाला गुल चमन देखता था।
झुक झुक मतवाला गावता रेखता था॥
श्रुतियुग चपला से कुण्डले झूमते थे।
नयन कर तमाशे मस्त ह्वै घूमते थे॥ ५॥

---

† पाठान्तर-निहारैं

तरल तरनि सी हैं तीर सी नोकदारैं।
अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल बिदारैं॥
मधुर मधुप हेरैं माल मस्ती न राखैं।
बिलसति मन मेरे सुन्दरी श्याम आँखें॥ ६॥

भुजँग जुग किधौं हैं काम कमनैत सोहैं।
नटवर! तब मोहैं बाँकुरी मान भौंहैं॥
सुनु सखि! मृदुबानी बेदुरुस्ती अकिल में।
सरल सरल सानी कै गई सार दिल में॥ ७॥

पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ।
असल अमृत प्याला क्यों न मुझको पिलाओ॥
इति वदति पठानी मनमथांगी विरागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥ ८॥

फुटकर छंद तथा पद

(घनाक्षरी)

अति अनियारे मनो सान दे सुधारे,
महा विष के विषारे ये करत परतात हैं।
ऐसे अपराधी देख अगम अगाधी यहै,
साधना जो साधी हरि हियमें अन्हात हैं ॥
वार वार वोरे याते लाल लाल डोरे भये,
तोहू तो 'रहीम' थोरे विधिना सकात है।
घाइक घनेरे दुख दाइक हैं मेरे नित,
नैन वान तेरे उर वेधि वेधि जात हैं ॥ १ ॥

पट चाहे तन पेट चाहत छदन मन,
चाहत ... धन जेती संपदा सराहवी।
तेरोई कहाय कै रहीम कहे दीनवंधु,
आपनी विपत्ति जाय काके द्वार काहिवी ॥
पेट भर खायो चाहे उद्यम वनायो चाहे,
कुटुम जियायो चाहे काढ़ि गुन लाहिवी।
जीविका हमारी जो पै औरन के कर डारो,
व्रजके विहारी तो तिहारी कहा साहिवी ॥ २ ॥

वड़ेनसों जान पहिचान कै 'रहीम' काह,
जो पै करतार ही न सुख देनहार है।

---

(१) नवीन-कृत प्रबोध रस सुधासागर से

(२) हमारी एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक से।

सीतहर सूरज सौं, नेह कियो याही हेत,
तौऊ पै कमल जारि डारत तुषार है ॥
क्षीर निधि माँहि धॅस्यो शंकर के सीस बस्यो,
तऊ ना कलंक नस्यो ससि में सदा रहे ।
बड़ो रिझिवार है चकोर दरबार है,
कलानिधि सो यार तऊ चाखत अँगार है ॥ ३ ॥

मोहिबो निछोहिबो सनेह में तो नयो नाहि,
भले ही निठुर भये काहे को लजाइये ।
तन मन रावरे सों मतों के मगन होतु,
उचरि गये ते कहा तुम्हें खोरि लाइये ॥
चित लाग्यो जित जैये तितही रहीम निति,
धाधवे के हित इत एक बार आइये ।
जान हुरसी उर बसी है तिहारे उर,
मे, सो प्रीत बसी तऊ हँसी न कराइये ॥ ४ ॥

---

(३) नवीन-कृत प्रबोध रस सुधा सागर मे यह पाठ है !
वड़ेन सों,जान पहिचान तो कहा 'रहीम'
जो पै करतार ही न सुख देनहार है ।
सीतहर सूरज सो प्रीत करी पकजने,
तऊ कुज-बनन कों मारत तुपार है ॥
उदधि के बीच धस्यो, शकर के सीस बस्यो,
तऊ न कलंक नस्यो ससि में सदा रहै ।
वड़े रिझिवार हैं चकोर दरबार देखो,
सुधाधर यार ए पै चुगत अंगार है ॥

(सवैया)

जाति हुती सखि गोहन में मन मोहन को लखि के ललचानो।
नागरि नारि नई ब्रजकी उनहूँ नँदलाल को रीझिबो जानो॥
जाति भई फिरिकै चितई तव भाव 'रहीम' यहै उर आनो।
ज्यों कमनैत दमानक में फिरि तीर सों मारि लै जात निसानो॥५॥

जिहि कारन बार न लाये कछू गहि संभु-सरासन दोय किया।
गये गेहहिं त्यागि के ताहि समै सु निकारि पिता बनबास दिया॥
कहे बीच 'रहीम' रह्यो न कछू जिन कीनो हुतो उन हार हिया।
बिधियों नसिया रसबार सिया कर बार सिया पिय सा रसिया॥६॥

दीन चहैं करतार जिन्हें सुख सो-तो 'रहीम' टरे नहि टारे।
उद्यम पौरुष कीने बिना धन आवत आपुहिं हाथ पसारे॥
दैव हँसे अपनी अपना बिधि के परपंच न जात बिचारे।
बेटा भयो वसुदेव के धाम औ दुंदुभि बाजत नंद के द्वारे॥७॥

पुतरी अतुरीन कहूँ मिलिकै लगि लागि गयो कहुँ काहु करैटो।
हिरदै दहिबै सहिबै ही को है कहिबै को कहा कछु है गहि फेटो॥

---

(६) नवीन-कृत प्रबोध रस सुधासागर मे यह पाठ है—
जिहि कारन बार न लायो कछू गहि सभु सरासन द्वैजु किया।
न हुतो समयो वनवासहु को पै निकास पिता वनवास दिया॥
भजि भेद 'रहीम' रह्यो न कछु करि राखी हुती उनहार हिया।
विधियों न सिया सुख बार सिया को सु बार सिया पतिवारसिया॥

(७) नवीन ने यह पाठ दिया है:—
दीनो चहे करतार जिन्हे सुख कौन रहीम सकै तिहि टारे।
उद्यम कोउ करो न करो धन आवत है बिन ताके हँकारे॥
दैव हँसे सब आपुस मे विधि के परपच न कोउ निहारे।
बालक आनक दुदुभी के भयो दुंदुभी बाजत आन के द्वारे॥

सूधे चितै तन हाहा करैं हू 'रहीम' इतो दुख जात क्यों मेटो।
ऐसे कठोर सों औ चित चोर सों कौन सी हाय घरी भय भेटों॥८॥

सीखी है ऐसो 'रहीम' कहा इन नैन अनोखे धों नेह की नाँधन।
ओट भये रहते न बने कहते न बने बिरहानल राधन॥
पुन्यन प्यारे सों भेट भई ए पै मौन कुसंग मिल्यो अपराधन।
स्याम सुधानिधि आननकी मरिये सखि सूधे चितैवे की साधन॥९॥

(दोहा)

धर रहसी रहसी धरम, खपजासी खुरसाण।
अमर ब्रिसंभर ऊपरै, राखो नहचौ राण॥ १०॥
तारायनि ससि रैन प्रति, सूर होहिं ससि गैन।
तदपि अँधेरो है सखी, पीउ न देखै नैन॥ ११॥

(पद)

छबि आवन मोहनलाल की।
काछे काछनि कलित मुरलि कर, पीत पिछौरी साल की॥
बंक तिलक केसर को कीने दुति मानो बिधु बाल की।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते चितवनि नयन बिसाल की॥
नीकी हँसनि अधर सधरनि की छबि छीनी सुमन गुलाल की।
जल सों डारि दियो पुरइन पर डोलनि मुकुतामाल की॥
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदन-गोपाल की।
यह सरूप निरखै सोइ जानै इस रहीम के हाल की॥ १२॥

---

(१०) पाठा०—ध्रम रहसी रहसी धरा खिस जासे खुरसाण।
अमर विसंभर ऊपरे, नहचौ राखो प्राण॥

कमल-दल नैननि की उनमानि ।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते मंद मंद मुसुकानि ।।
यह दसननि-दुति चपलाहू ते महा चपल चमकानि ।
बसुधा की बस-करी मधुरता सुधापगी बतरानि ।।
चढ़ी रहे चित उर बिसाल की मुकुतमाल थहरानि ।
नृत्य समय पीतांबर हू की फहरि फहरि फहरानि ।।
अनुदिन श्रीवृन्दाबन ब्रज ते आवन आवन जानि ।
ब रहीम चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि ।।१३।।

शृंगार-सोरठा

गई आगि उर लाय, आगि लेन आई जो तिय।
लागी नाहिं बुझाय, भभकि भभकि बरि बरि उठै ॥१॥

तुरुक गुरुक भरिपूर, डूबि डूबि सुरगुरु उठै।
चातक जातक दूरि, देह दहै बिन देह को ॥२॥

दीपक हिए छिपाय, नवल बधू घर लै चली।
कर बिहीन पछिताय, कुच लखि निज सीसै धुनै ॥३॥

पलटि चली*मुसुकाय, दुति रहीम उपजाय अति।
बाती सी उसकाय, मानों दीनी दीप की ॥४॥

यक नाही यक पीर, हिय रहीम होती रहै।
काहु न भई सरीर, रीति न बेदन एक सी ॥५॥

रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै।
कधौं शालिग्राम, रूपे के अरघा धरे ॥६॥

रहीम काव्य

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण या भूमिका ।
व्योमाकाशखखांवराब्धिवसुवत् त्वत्प्रीतयेऽद्यावधि ॥
प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष भगवन् स्वप्रार्थितं देहि में ।
नोचेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशो भूमिका ॥१॥

आपको प्रसन्न करने को मैं नट के समान आपकी इस भूमि पर चौरासी लाख रूप धारण करता रहा । हे परमेश्वर !

---

(१) इसी भाव के दो छप्पय इस प्रकार हैं—

व्योमंबर आकाश नाक नभ श्रुति वसुवपु धर ।
अद्भुत रचि रचि भेप चरित करि करि विचित्र वर ॥
नटवत धरि वहु रूप भूप जगदीश रीझ हित ।
धारयो जग दरबार बार वहु सुनिय सदय चित ॥
जो पै विलोकि प्रमुदित प्रभू, तो 'बिहारी' वांछित स्वचहु ।
रीझे कदापि नहि होउतो, आवा गमन निपिध करहु ॥

—जानीबिहारी लाल 'बिहारी'

रिझवन हित श्री कृष्ण स्वॉंग मैं वहु विधि लायो ।
पुर तुम्हार है अवनि अहंवहु रूप कहायो ॥
गगन वेत खख व्योम वेद वसु स्वाँग दिखाये ।
अन्त रूप यह मनुप रीझ के हेत वनाये ॥
जो रीझे तो दीजिये, ललित रीझ जो चाह सब ।
नाराज भये तो हुकुम कर, स्वॉंग फेरि मत लाय अब ॥

—अज्ञात

यदि आप इसे (दृश्य) देखकर प्रसन्न हुए हों तो "जो" माँगता हूँ सो दीजिए, और जो प्रसन्न न हुए हों तो ऐसी आज्ञा दीजिए कि मैं फिर कभी इस पृथ्वी पर न लाया जाऊँ।

कबहुँक खग मृग मीन कबहुँ मर्कट वन धरिके।
कबहुँक सुर नर असुर नाग मेष आकृति करिके॥
नटवत लखि चौरासि स्वाँग धरि धरि मैं आयो।
हे त्रिभुवन के नाथ रीझ को कछू न पायो॥
जो हो प्रसन्न तो देहु अब मुकति दान माँगू विहँस।
जो पै उदास तो कहहु इमि मत धर रेन र स्वॉग अस॥ †

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणीच पद्मा
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
राधागृहीतमनसे मनसे च तुभ्यं
दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण॥ २॥

जब रत्नाकर (समुद्र) तो आपका गृह है और लक्ष्मी आप की गृहिणी है तब, हे जगदीश्वर! आप ही बतलाइए कि आप को देने योग्य क्या वस्तु बच गई? राधिकाजी ने आपका मन हरण कर लिया है, इसलिये मैं अपना मन ही आप को अर्पण करता हूँ। आप ग्रहण कीजिये।

अहिल्या पाषाणः प्रकृतिपशुरासीत् कपिचमू।
गुहो भूच्चांडालस्त्रितयमपि नीतं निजपदम्॥
अहं चित्तेनाश्मः पशुरपि तवार्चादिकरणे।
क्रियाभिश्चांडालो रघुवर नमामुद्धरसि किम्॥३॥ ×

---

† अजमेर से प्रकाशित 'विविध सग्रह' से इसी विषय का रहीम रचित छप्पय।

× दोहा नम्बर १४८ में यही भाव है।

अहिल्याजी पत्थर थीं, बंदरों का समूह पशु था और निषाद चांडाल था, पर तीनों को आपने अपने पद में शरण दी। मेरा चित्त भी पत्थर है, आपके पूजन में पशु समान भी हूँ और कर्म भी चांडाल सा है, इसलिए आप मेरा क्यों नहीं उद्धार करते।

यद्यात्रया व्यापकता हताते भिदैकता वाक्परता च स्तुत्या
ध्यानेन बुद्धेः परता परेशं जात्या जताक्षन्तुर्मिहार्हसित्वं ॥ ४ ॥

मैंने यात्रा से आप की व्यापकता मिटाई, भेद से एकता, स्तुति करके वाक्परता, ध्यान करके आप को बुद्धि से अगम्यता और जाति निश्चित करके आपका अजातिपन नाश किया है, सो हे परमेश्वर ! आप इन अपराधों को क्षमा कीजिए।

दृष्टातत्र विचित्रतां तरुलतां, मैं था गया बाग़ में।
काचित्तत्र कुरङ्गशावनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ॥
उन्मद्भ्रूधनुपा कटाक्षविशिखैः, घायल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुज़ारो शुकर ॥५॥

विचित्र वृक्षलता को देखने के लिए मैं बाग़ में गया था। वहाँ कोई मृगशावकनयनी खड़ी फूल तोड़ रही थी। भ्रमर-रूपी धनुप से कटाक्ष के बाण चलाकर उसने मुझे घायल किया। तब मैं सदा के लिये मोह-रूपी समुद्र में पड़ गया, इससे हे हृदय धन्यवाद दो।

एकस्मिन्दिवसावसानसमये, मैं था गया बाग़ में।
काचित्तत्र कुरङ्गबालनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ॥
तां दृष्ट्वा नवयौवना शशिमुखी, मैं मोह में जा पड़ा।
नो जीवामित्वया विनश्शृणु प्रिये, तू यार कैसे मिले ॥६॥
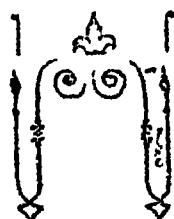
एक दिन संध्या के समय मैं बाग़ में गया था। वहाँ कोई मृगछौने के नेत्रों के समान आँखवाली खड़ी फूल तोड़ती थी, उस चंद्रमुखी नवयुवती को देखकर मैं मोह में जा पड़ा। हे प्रिये! सुनो, मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकता तुम कैसे मिलोगी?

अच्युतचरणतरङ्गिणी शशिशेखरमौलिमालतीमाले।
मम तनुवितरणसमये हरता देया न मे हरिता ॥७॥ ×

विष्णु भगवान् के चरणों से प्रवाहित होने वाली और महादेवजी के मस्तक पर मालतीमाला के समान शोभित होने वाली हे गंगे! मुझे तारने के समय महादेव बनाना न कि विष्णु (जिससे मैं तुम्हें शिर पर धारण कर सकूं)।

× दोहा नंबर १ में यही भाव है।

टिप्पणी

दोहावली

१ अच्युत-चरन-तरंगिनी—विष्णु भगवान् के चरणो से निकली हुई गंगाजी।

मालति—मालती, सुगधित श्वेत पुष्प विशेष।

शिवसिर मालति माल—शिवजी के मस्तक पर मालती की माला के समान शोभायमान।

इंदव-भाल—महादेवजी, जिनके मस्तक पर चन्द्रमा शोभित हैं।

भावार्थ—हे गगे! तुम्हारे प्रताप से भक्तजन मरने पर विष्णु वा महादेव-रूप हो जाते है। मुझको तुम महादेव बनाना, न कि विष्णु; जिससे कि मैं तुमको सिर पर धारण करूँ, न कि विष्णु की तरह पैरो से स्पर्श करूँ।

गंगाजी की महिमा का वर्णन है। इस दोहे मे 'रहीम' उपनाम नहीं है। स्वरचित सस्कृत श्लोक का भावार्थ रहीम ने इसमें दिया है।

२ नीरस—रसहीन, सारहीन।

३ यथा—जानबूझ अजुगत करे, तासो कहा, बसाय।
जागत ही सोवत रहे, केसे ताहि जगाय॥ [वृन्द]
समुझि सुरीति कुरीति रत, जागत ही रह सोय।
उपदेसिबो जगाइबो, तुलसी उचित न होय॥ [तुलसी]

४ बड़ेन के जोर—बड़ो का सहारा पाकर।

पचवत—पचाता है। चकोर पक्षी के लिए यह प्रसिद्ध है कि वह चन्द्रमा पर मुग्ध है और अँगारे खाता है।

५ गुरायसु—(गुरु+आयसु) बड़ो की आज्ञा।

गाढ़—कठिन।

भावार्थ—गुरुजनो की आज्ञा चाहे जैसी कठिन क्यों न हो, यदि वह अनुचित हो तो न माननी चाहिए। रामजी पिता का वचन मान वन को गये और भरतजी ने गुरुजनों की आज्ञा न मान कर राज न लिया। फिर भी भरतजी का यश रामजी के यश से अधिक है।

६ गाढ़े—कठिन।

७ अमरबेलि—बिना पत्ती और मूल की लता विशेष, जो वृक्षों पर फैल जाती है।

८ रिस—क्रोध।

गाँस—गाँठ, मिलावट, मनोमालिन्य।

९ अरज गरज—खुशामद।

११ ढिग—पास, समीप।

१३ बरै—वट वृक्ष।

बरोह—वट वृक्ष की शाखा, जो भूमि में धँस जाती है और जड़ों का काम देती है।

१४ उरग—सर्प।

तुरंग—घोड़ा।

यथा—उरग तुरग नारी नृपति, नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहत नित, इनहिं न पलटत बार॥ [तुलसी]

१५ अथवत—अस्त होता है। देखिये दोहा नं० १५८।

१६ अघाय—पूर्ण रीति से।

यही दोहा 'कबीर-वचनावली' में (नं० ७६८) भी है। 'रहिमन' के स्थान मे 'जो तू' है।

१८ देखो दोहा न० ६२।

१९ भावार्थ—जिन आँखों से भगवान के दर्शन हुए हैं और जिनमें

उनका वास है, उन आँखो में किरकिरा अंजन कैसे लगाया जाय। सुरमा भी नही लगाया जा सकता, क्योकि उनको सलाई लग जाने का भय है।

२० अंड—एरड का वृक्ष।

बौड़—बौड़ाना, पागल होना, भ्रम में पड़ना।

भावार्थ—रे एरड! अपने चिकने पत्तों को देखकर धोखे में न आ! तू अपने को तरुवर मत समझ! तरुवर दूसरे ही होते है, जो कुल्हाड़ी की चोट और हाथियों के धक्के सहते है।

२१ दाव—अग्नि।

२२—स्वाति नक्षत्र मे वर्षा की बूँद केले में पड़े तो कपूर बनता है, सीप मे गिरे तो मोती और सर्प के मुख में गिरे तो विष बनता है—ऐसा कवि कहते है।

यथा—सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, सगत के फल सूर॥ [सूर]

देखो दोहा न० १४७

२३ कमला—(१) लक्ष्मी, (२) धन।

पुरुष पुरातन—(१) विष्णु, (२) वृद्ध पुरुष।

२४ लखत—दृष्टिपात करते हैं।

प्रभु की—लक्ष्मी, विष्णु भगवान की स्त्री।

फजीहत—दुर्दशा, बदनामी।

२५ निपुनई—चतुराई।

हुजूर—प्रत्यक्ष, सम्मुख।

भावार्थ—जो मनुष्य बिना किसी गुण के होते, निपुण पुरुषों के सम्मुख, अपनी डींग मारता है, वह मानो वृक्ष पर चढ़कर अपनी मूर्खता की घोषणा करता है।

२६ यथा— अखियाँ अनजान भईं।

यों भूली ज्यो चोर भरे घर चोरी निधि-न लई ।
बदलत भोर भयो पछतानी, कर ते छाँड़ दई ॥ [सूर]

२७ दुति—द्युति, प्रकाश ।

दुरै—छिपाया जाय ।

भावार्थ—एक ही दीपक से सब ओर प्रकाश फैल जाता है, तो फिर शरीर मे जहाँ नेत्र-रूपी दो दीपक चमक रहे हैं, वहाँ प्रेम कैसे गुप्त रह सकता है ।

यथा—'प्रेम दुरायो ना दुरै नैना देहि बताय' [बेरीसाल]
एक दीप ते गेह की, प्रगट सबै निधि होय ।
मन को नेह कहाँ छिपे, जहँ दृग दीपक दोय ॥
(दोहासारसग्रह स० १७२०)

३० भावार्थ—प्रीति जगत से यह कह कर चली गई है, कि रहीम अब तुझे नीच पुरुषो मे रहकर स्वार्थ ही स्वार्थ दिखाई देगा । इस दोहे के और भी अर्थ हो सकते है ।

३१ संपति सगे—धन के साथी ।

विपति-कसौटी जे कसे—विपत्ति में जिनकी परीक्षा हो चुकी है । जैसे सुवर्ण की परीक्षा कसौटी पर घिस कर होती है ।

३२ केतिक—कितनी ।

गई बिहाय—बीत गई ।

३३ भावार्थ—बेर और केले की मित्रता कैसे निभ सकती है । बेर तो अपने रस मे मस्त होकर झूमते हैं और केले के पत्ते काँटो से छिद जाते हैं ।

यथा—'कहियो जाय सूर के प्रभु सो, केर पास ज्यों बेर' [सूर]
दुष्ट निकट बसिये नहीं, बस न कीजिये बात ।
कदली बेर प्रसंग ते, छिदे कटकन पात ॥ [वृन्द]

३५ खैंचत बाय—श्वास लेता है । देखो दो० न० ८६ ।

कौन भरोसा देह का, छाँड़हु जतन उपाय।
कागद की जस पूतरी, पानि परे घुलि जाय॥ [उसमान]

३६ भावार्थ—अपना मतलब निकल आने पर मनुष्य का व्यवहार कैसा बदल जाता है। जिस मौर को विवाह के समय सिर पर पहिनते है, कार्य होने के बाद उसी को नदी में बहा देते हैं।

३८ कल्प वृक्ष—स्वर्ग का कल्पवृक्ष, जो मनचाहा पदार्थ देता है।

यह दोहा शिवसिंहसरोज तथा अन्य ग्रन्थो में 'अहमद' के नाम से भी मिलता है।

३९ कामरी—कम्बल।

पामड़ी—मखमल वा बनात का सा कीमती कपड़ा।

जाड़—जाड़ा।

४० कुछ मिलता-जुलता यह भी एक दोहा है—

क्यो बसिये क्यो निबहिये, नीति नेह पुर नाहिं।
लगालगी लोयन करैं, नाहक मन बँध जाहि॥

४१ गैर—शत्रुता। यह दोहा वृन्द-सतसई मे भी है। 'रहिमन' के स्थान मे "जैसे" है।

४२ भावार्थ—रहीम कहता है कि कोई किसी के द्वार पर जाकर पछताय नहीं, क्योकि धनी के पास तो सभी जाते है और विपत्ति कहाँ नहीं ले जाती।

४५ करुए मुख—कटुभाषी।

सजाय—दण्ड; सजा।

विशेष—नमक के सयोग से खीरे का कड़वापन जाता रहता है।

४६ बंसदिया—आकाश-दीप जो कार्तिक मास में छत पर बाँस से लटकाते है।

भावार्थ—आज कल मोहन ने आकाश दीप की चाल सीख ली है। जैसे आकाश-दीप डोरी खींचने पर ऊपर चढ़ जाता है और ढीली करने

से पास आ जाता है, वैसे ही मोहन बुलाने पर दूर भागते हैं और उदासीनता दिखाने पर स्वयं आ जाते हैं।

कहा जाता है कि रहीम ने यह दोहा उस समय कहा था, जब श्रीनाथजी स्वयं प्रसाद लेकर दर्शन देने आये थे।

४७ खैर—(फारसी) कुशल; खैर।

खून—नरहत्या।

इस दोहे का पाठांतर निम्नलिखित भी मिलता है:—

इश्क मुश्क खाँसी खुशक वैर प्रीति मदपान।
रहिमन दावे ना दवे जानत सकल जहान॥

५० गुन—(१) गुण (२) रस्सी।

सलिल—जल।

भावार्थ—जब रस्सी द्वारा कुएँ से जल निकल सकता है तो अपने गुणों द्वारा दूसरे के मन की बात, जो कुएँ की बराबर गहरा नहीं होता, क्यों नही जानी जा सकती।

५१ गुरुता—बड़ाई; बड़प्पन।

फबै—शोभा को प्राप्त होना।

बतौरी—रसौली; रोग विशेष जिसमें माँस-पिण्ड की गाँठ बन जाती है।

५३ चारा—भोजन।

छाला—चमड़ी; नरतनु। देखो दो नं० १६६।

यथा—को न याति वशं लोक मुख पिंडेन पूर्यते।
मृदगो मुखलेपेन करोति मधुरं ध्वनिम्॥

५४ कहा जाता है कि जब रहीम स्वय निर्धन हो गये थे और एक याचक की मदद करने में असमर्थ थे, तब सिफारिश में इस दोहे को लिख कर याचक के हाथ रीवाँ-नरेश के यहाँ भेजा था। राजा ने उस व्यक्ति को एक लाख रुपया दे दिया।

५५ छिमा—क्षमा।

उतपात—अपराध।

भृगु मारी लात—ब्रह्मा, विष्णु और महेश में कौन बड़ा है, इसकी परीक्षा करने भृगुजी निकले। वे पहिले ब्रह्मा के पास और फिर शिव के पास गये। ये दोनो तो भृगुजी के व्यवहार से रुष्ट हो गये। विष्णु भगवान सो रहे थे, सो भृगुजी ने पहुँचते ही उनकी छाती पर लात मारी। भगवान अप्रसन्न होने के बदले भृगुजी के चरण दबाने लगे, कि कठोर छाती से पैर मे कही चोट तो नहीं आ गई। विष्णु भगवान के वक्षस्थल पर चरण-चिह्न भृगुजी का ही है।

५६ रेख—पत्थर की लकीर, निश्चय।

सहसन को—हजारों रुपये का।

हय—घोड़ा।

दमरी—दस कौड़ी।

मेख—खूंटा।

५७ सुख दुःख मिलन अगोट—मेल में सुख और अनैक्यता में दुःख (यथासंख्या)।

अगोट—भिन्नता; अनैक्यता; (संस्कृत गोष्ठी)।

भावार्थ—जब तक ससार मे जीवन है, मेल मे सुख है और विलग होने में दुखः है जैसे चौपड के खेल मे गोटियों का जुग नहीं पिटता और जुग फूटने से दोनों गोटियाँ पिट सकती है।

यथा—फूटे ते नरद उड़िजात बाजी चौसर की,
आपुस के फूटे कहो कौन को भलो भयो—[गंग]

५८ वित्त—धन।

अंबुज—कमल, जलज, अबु अर्थात् जल से उत्पन्न होनेवाला।

भावार्थ—वही सूर्य जो कमलों को खिलाता है, सरोवर में पानी

सूखने पर कमलों को सुखा डालता है। मित्र भी तभी तक हितू हैं जब तक अपने पास पैसा है।

यथा— कुसमय मीत काको कवन।
कमल को रवि परम हित है, कहत श्रुति अस वयन।
घटत वारिध भयो दारुण करत कमलन दहन॥ [सूर]

५९ छीर—दूध।

जल और दूध के मेल का उदाहरण संस्कृत और हिन्दी काव्य में अति प्रसिद्ध है। जल जब दूध में मिलता है तो दूध उसको अपना रूप-रंग देकर एक रस बना लेता है। जब दूध गरम किया जाता है तो पानी मित्र के नाते पहिले स्वय जलता है और दूध की रक्षा करता है। सब जल जल जाता है तो मित्र के वियोग से दूध उफन कर अग्नि में गिरने जाता है। परन्तु ज्यों ही जल के छींटे दूध को मिले कि उफान शान्त हो जाता है। इसी भाव के अंश पर इस दोहे की रचना रहीम ने की है।

यथा—तोय मोल में देत हो छीरहिं सरिस बढ़ाइ।
आँच न लागन देत वह, आप पहिल जरि जाइ॥ [रसनिधि]

६० गाँठ—ईख की गाँठ और मनोमालिन्य।

जोय—जानता है।

मड़एतर की गाँठ—विवाह-मंडप में वरवधु को परस्पर बाँधने की गाँठ।

६१ छोह—स्नेह; प्रेम।

यथा—प्रेमी प्रीत न छाँड़ही, होत न प्रनते हीन।
मरे परेहू उदर मे, ज्यों जल चाहत मीन॥ [वृन्द]
मीन काट जल धोइए, खाये अधिक पियास।
तुलसी प्रीत सराहिये, मुये मीत की आस॥ [तुलसी]

६२ दुरयो—छिपाया गया। देखो दो० नं० ८०।

६४ वापुरो—वेचारा; गरीव। श्रीकृष्ण और सखा सुदामा की कथा प्रसिद्ध है।

६५ नखत—नक्षत्र।

कूबरो—वक्र, टेढ़ा।

भावार्थ—जिसको विधाता ने बड़ाई दी उसमें कोई क्या दोष निकाल सकता है। चन्द्रमा पतला और टेढ़ा क्यों न हो, फिर भी सब नक्षत्रों से अधिक प्रकाशवान है।

यथा—होहि बडे लघु समय सह, तो लघु सकहिं न काढि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते वाढ़ि॥ [तुलसी]

६६ दाहे—जलाये हुए।

भावार्थ—एक वार पदार्थ जो जल कर राख हो गया, वह फिर नहीं जल सकता। परन्तु जो प्रेम से दग्ध हुए हे उनके हृदय बुझ कर भी सुलग उठते हैं। यही प्रेमाग्नि की विचित्रता है। यह दोहा 'दोहासार-सग्रह, मे 'अहमद' के नाम से इस प्रकार दिया हुआ है—

अहमद दाहे प्रेम के, बूझि बूझि सिलगाहि।
जो सिलगे ते फिर बुझे, बुझे ते सिलगे नाहि॥

६९ अंक—कलंक, अपवाद।

७० अपत—[१] अप्रतिष्ठित [२] विना पत्ते का।

करील—वृक्ष विशेष जिसका फल टेटी कहलाता है।

कदली—केला।

सुपत—[१] प्रतिष्ठित [२] अच्छे पत्तेवाला।

७१ पेट लागि—पेट के लिए।

इस दोहे में महाभारत में वर्णित पाण्डवो के अज्ञातवास के समय भीम का विराट राजा के यहाँ रसोइये का काम करने की कथापर लक्ष्य है।

७३ मरजाद—मर्यादा, हद्द।

७४ प्रकृति—स्वभाव।

भुजंग—सर्प।

यथा—सुजन सुसंगति संगते, सज्जनता न तजंत।
ज्यौं भुजंग-गन संग तउ, चन्दन विष न धरंत॥ [वृन्द]

७५ टेढ़ो टेढ़ो जाय—प्यादे की चाल सीधी होती है, परन्तु जब प्यादा फर्जी या वजीर बन जाता है तो उसकी चाल टेढ़ी हो जाती है।

७६ भावार्थ—यदि श्रीकृष्ण को ब्रज की यही दशा करनी थी, अर्थात् छोड़ जाना था, तो फिर गिरवर धारण कर इन्द्र के कोप से उसकी रक्षा काहे को की थी।

७७—बारे—[१] बाल्यावस्था [२] जलाना (दीपक के लिये)।

७८ बढ़े—[१] बड़े होने पर [२] दीपक के लिये बुझने पर।

७९ काया—शरीर।

८० तिय राखत पट ओट—स्त्री अंचल की आड मे दीपक को पवन से सुरक्षित रखती है। देखो दो० नं० ६२।

८१ आँसु गारिबो—आँसू गिराना।

खाँस—व्यर्थ।

८२ भावार्थ—यदि प्रभु की इच्छा अपने अधीन होती तो फिर अहंकार-वश कौन किस को गिनता?

८३ विषया—विषय वासना।

भावार्थ—जिन विषय-वासनाओं को संत जनों ने छोड़ दिया है उन्हीं के पीछे मूढ लगे रहते हैं जैसे वमन किये हुए अन्न को कुत्ता प्रेम से खाता है। त्यक्त विषय-वासना भी वमन के समान ही है।

८४ गात—शरीर।

भावार्थ—हमारे शरीर को कर्म वा प्रारब्ध कठपुतली के समान नचाता है। सब काम हमारे हाथ से ही होते प्रतीत होते हैं, फिर भी हमारे हाथ में (वश मे) कुछ नहीं है। देखो दो० नं० १११

८५ टूटे—रूठे हुए।

८६ ओहि ओर—ईश्वर की ओर।

भावार्थ—शरीर चाहे कर्मों मे फँसा हुआ हो परन्तु मन को ईश्वर मे लगाना चाहिये जैसे बहाव के विरुद्ध नाव को रस्सी से खींचते है।

८७ दीबो होय न धीम—दान करना बन्द न हो।

कुचित—अनुचित।

८८ सँचहि—संचित करते है।

यथा—पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
पयोमुचाम्भः क्वचिदस्ति पास्य परोपकाराय सतां विभूतयः॥

८९ एती—इतनी।

खैंचत बाय—श्वास लेता है।

खस—घास। देखो दोहा नं० ३५।

९० चारु—सुन्दर।

चकोर—पक्षी विशेष, जिसके सबंध में कवियों की कल्पना है कि वह चन्द्रमा पर मुग्ध है, उसी को देखता रहता है और अग्नि खाता है।

भावार्थ—जैसे चकोर चन्द्रमा की ओर सदा दृष्टि लगाये रहता है वैसे ही रहीम ने अपने मन-रूपी चकोर को कृष्णरूपी चन्द्रमा से लगा रक्खा है। चकोर सबंधी कुछ अनूठी उक्तियाँ:—

पावक चुगत चकोर नित, भस्म करन को अग।
ह्वै भभूत शिव सिर चढ़ूँ, तो पाऊँ ससि संग॥ [दोहा सार०]
याके बल वह लेत है, पावक चिनगी खाइ।
चदहि जो जारन लगे, तो चकोर कित जाइ॥ [रसनिधि]

९१ थोथे—खाली, जलहीन।

पाछिली बात—बीते हुए सुखी दिनों की बात।

९२ भावार्थ—श्रीकृष्ण ने गिरवर को धारण ही भर किया था फिर भी उनका नाम गिरिधर हो गया। और हनुमानजी तो पहाड़ उठा कर

लंका ले गये तो भी उनको यह पदवी न मिली। बड़े की प्रशंसा सहज मे हो जाती है, और छोटों की नहीं होती।

९३ दादुर—मेढ़क।

सरवर—बराबरी।

भावार्थ—मेंढ़क, मोर, किसान, सब का जी मेघ में लगा रहता है कि वृष्टि हो और चातक को भी मेघ की ही रटना लगी रहती है, परन्तु चातक की बराबरी इनमें से कोई भी नही कर सकता। चातक को तो मेघ ही की रटन लगी रहती है।

९४ दुःख में ही तो ईश्वर याद आता है, विपत्ति ही भगवान की ओर मनको मोड़ती है।

९५ इस दोहे के उत्तरार्ध का पाठ निम्नलिखित भी मिलता है 'रहिमन भली सो दीनता नरो सो देवता होय' जिसका यह अर्थ होता है कि देवता सबको देखते है किन्तु उनको कोई नहीं देखता। दीनता के कारण दीन मनुष्य की भी यही दशा हो जाती है। अतएव दीनता मे मनुष्य देवता हो जाता है।

९६ नट-कुण्डली—कलाबाजी दिखाने का चक्र, जिसमें से शरीर सिकोड़ कर नट कूद जाता है। दोहे की प्रशसा में 'बिहारी' का वाक्य याद आता है—

'देखत को छोटो लगे, घाव करै गंभीर'।

९७ भावार्थ—रहीम की दुर्दशा सुनकर लोग तो हँसी करते हैं और रहीम का धीरज छूट जाता है। परन्तु भगवान ही एक ऐसे हैं जो दुःख सुनते है और सुन कर उपकार भी करते हैं।

९८ दुरथल—बुरा स्थान।

घूर—घूरा; कूड़ा जमा करने का स्थान वा जमा किया हुआ कतवार।

९९ हित—प्रीति।

भावार्थ—जब बुरे दिन आते हैं तो जान पहिचान के लोग भी

भूल जाते है। यदि हित की हानि न हो तो धन जाने का दुःख न हो। परन्तु धन जाने पर लोग भूल जाते है, यही दुःख की बात है।

१०० यह दोहा रहीम ने कवि गग के निम्नलिखित दोहे के उत्तर मे भेजा था—

सीखे कहाँ नवाब जू, ऐसी देनी दैन।
ज्यो-ज्यों कर ऊँचो करो, त्यों त्यों नीचे नैन ॥

१०१ कौआ और कोयल दोनो काले रंग के होते है केवल बोली का भेद है—यथा—भले बुरे सब एक से ज्यौ लों बोलत नाहि।
जान परत है काक पिक, ऋतु बसंत के माँहि ॥ [वृन्द]

१०३ गाढ़े दिन को मित्त—बुरे दिनो मे काम आनेवाला मित्र।

१०४ अनत—अन्य स्थान।

भाय—रुचि।

१०५ पंक—कीच; यहाँ गड़ही या तालाब से मतलब है।

उदधि—समुद्र।

यथा—अमित कथा है ही भरे, जदपि समुद्र अभिराम।
कौन काम के जो न तुम, आये प्यासन काम ॥ [वृन्द]

१०६ देखो दोहा नं० ६८

१०७ हाथी की टेव है कि सूँड से धूल उठाकर अपने शरीर पर डालता है। किसी ने इसका कारण पूछा, तो कवि ने कहा कि श्रीराम के चरण की उस रज को खोजता है, जिसके स्पर्श से अहिल्या का उद्धार हुआ था। अहिल्या शाप से शिला हो गई थी और फिर श्रीराम ने उसका उद्धार किया था। यह रामायण की कथा प्रसिद्ध है।

१०८ मृगया—शिकार।

१०९ नात—नातेदारी।

नेह—स्नेह, प्रेम।

गड़ही को पानी—छोटे गढ़े का पानी।

भावार्थ—जलाशय के जल की भाँति सबंधियों का प्रेम भी दूर का ही अच्छा होता है, निकट रहने पर तो गड़ही के जल की कद्र कम हो जाती है।

११० नाद रीझि...—मृग को नाद प्रिय है। पकड़ने वाले उसको बाजा सुना रिझा कर पकड़ लेते हैं।

रीझेहु—प्रसन्न होकर भी।

१११ क्रिया—कर्म।

सिधि—सिद्धि, फल।

भावी—भविष्य, विधाता।

भावार्थ—कर्म करना अपने हाथ में है परन्तु उसका फल दैवाधीन है। जैसे चौपड़ के खेल में पासा डालना अपने आधीन है परतु दाँव क्या आवेगा यह अपने हाथ में नही है वह दैवाधीन ही है।

११२ सलोने—नमकीन।

अधर—होंठ।

मधु—मीठा।

११३ पन्नग-वेलि—नागवेलि, पान की लता।

रिति—रीति, तरह।

सम—बराबर, एकसी।

दहियान—जलाया गया, तपा हुआ।

हिम—पाला, बरफ। पान की वेल तथा पतिव्रता स्त्री के प्रेम मे यह अपूर्वता है कि वेल शीत पूर्ण पाले से जल जाती है और स्त्री पति की दूरी के कारण विरह से जलती है।

११४ परि रहिबो—पड़ा रहना।

बामन—वामन अवतार, जिसको धारण कर भगवान ने तीन चरण धरती माँगकर राजा वलि को छला था।

११५ पसरि—फैलाकर।

पत्र—यहाँ इसका अर्थ पखुरी है, न कि पत्ते।
झँपहि—छिपा लेता है।
पितहि—पिता को, कमल का पिता जल।
सकुचि—पखुरी बन्दकर।
कुल कमल—कमला का वश अर्थात् जल और फूल।

भावार्थ—कमल सूर्य के उदय होने पर खिलता है और रात को वो चाँदनी मे सकुचित हो जाता है। अतएव सूर्य कमल का मित्र है और चन्द्रमा उसका शत्रु है परन्तु वही सूर्य जो कमल को खिलाता है, तालाब के पानी (कमल के पिता) को सुखा देता है। सूर्यताप से जल की रक्षा कमल अपने पखुरियो को फैलाकर अथवा विकसित होकर करता है और रात्रि को जब चन्द्रमा का उदय होता है और शीतल चाँदनी निकलती है, जो पानी की हितु है और कमल की शत्रु है, उस समय कमल अपनी पखुरी समेट लेता है और जल पर चन्द्रकिरण अच्छी तरह पड़ने देता है। जल और जलज का ऐसा परस्पर प्रेम होने से उनके वश का सूर्य, चन्द्र मे से किसको शत्रु कहा जाय और किसको मित्र कहा जाय।

११६ पात—पत्र वा पत्ता।
बरी—ऊर्द की दाल को पीसकर बनाई हुई बड़ी।
बरैगो—प्रशसा करेगा।
यथा—पात पात को सीचनो, बरी बरी को लौन,
'तुलसी' खोटे चतुरपन, कलिदुइ के कहु कौन।

११७ पावस—वर्षा ऋतु।
साधे मौन—चुप हो गई।
दादुर—मेढ़क।
वक्ता—बोलने वाले।
यथा—तुलसी पावस के समय घरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमहि पूछिहै कौन॥

११८ देवरा—भूत प्रेत।

तिय—स्त्री।

पड़ो—पड़ा, भैंस का बच्चा।

११९ पर छबि—अन्य की सूरत।

पथिक—राहगीर, मुसाफिर, यात्री।

१२० फरजी—फर्जी या वजीर का मोहरा। साह-मीर वा बादशाह का मोहरा शतरंज के खेल का।

गति टेढ़ी—वजीर की टेढ़ी चाल होती है।

तासीर—असर

१२१ माया—धन, ऐश्वर्य।

१२२ उर—हृदय, मन।

हरि—भगवान।

हाथी—जिसका भगवान ने ग्राह से उद्धार किया था।

१२३ हहरि कै—गिड़गिड़ा कर। हाथी के दाँत बाहर निकले रहते है उस पर कवि की उक्ति है। गिड़गिड़ा कर दाँत दिखाना दीनता का लक्षण है।

यथा—बड़े पेट को दुःख कर, मन संतोष 'निहाल'
दाँत काढ़ हाथिन दे, बड़े पेट के हाल—[गुण गजनामा]

१२४ राइ—मसाले का छोटा दाना।

भावार्थ—बड़े कभी छोटे नही होते, छोटे इतरा कर चाहे कभी बढ़ भी जाँय। जैसे राई समान छोटा बीज करौंदा हो जाता है परन्तु कटहर कभी राई के समान छोटा नहीं होता।

१२५ बड़ाई—आत्म प्रशंसा।

बड़ो बोल—अपनी बड़ाई। १२६ देखो दोहा नं० २६।

१२७ सोस—सोच, अफसोस। रावण के पड़ोस में था इसलिये समुद्र बांधा गया।

यथा—दुर्जन के संसर्ग ते, सज्जन लहत कलेस।
ज्यो दसमुख अपराध ते, बंधन लह्यो जलेस॥ [वृन्द]

१२८ मुक्तावली नामक ग्रन्थ से संग्रहीत।

१३० नभ—आकाश। विपत्ति मे 'सञ्चितोऽपि विनश्यति'।

१३१ तजन—त्याग।

विलग—अलग।

१३२ धर—धड़, शरीर।

परि—गिरकर।

खेत—लड़ाई का मैदान। इस दोहे मे रहीम का उपनाम नही है।

भावार्थ—युद्ध मे सिर कटके गिरता है तो कुछ देर तक वह फड़कता रहता है। इसी का नाम हॅसना है। सिर कट के गिरा तो हॅसा कि अब उसको पेट के लिये सबके सामने झुकना न पड़ेगा।

१३३ भार—भाड़ और बोझा, (अहंकार पापादि का)।

यथा—यकिज रहे उरवार, जिन सिर भारी भार थे।
'अहमद' उतरे पार, झार झबो के भार मे [गुणगंजनामा]

१३४ भावी—होनहार, प्रारब्ध।

दही—मेटा, जलाया।

१३५ उनमान—उन्मान, परिमाण, तौल। बरु—वर, पति।

संभु—शभु, महादेव जी।

अजीम—बड़ा।

भावार्थ—यद्यपि पार्वतीजी का विवाह महादेवजी से हुआ फिर भी वह वंध्या ही रही। कवि परिपाटी में पार्वती को वंध्या ही कहा गया है। यथा—

सीता पायो दुःख और पारवती वंध्या तन,
नृग ने नरक पायो वैस्या गति पाई है।

× × × × ×

हाल ठकुराइस मे बोलिबो अचभो यह,
ईश्वर के घर ते अपेलि चलि आई है ॥

१३६ पाखान—पाषाण, पत्थर।

अररानी—पत्थर गिरने का शब्द।

भावार्थ—गिरे हुए पत्थर को सोच है कि उनमें से अब कौन सा पत्थर कहाँ काम में आवेगा अर्थात् सब अलग हो जायँगे।

१३७ गनत—गिनते हैं।

भावार्थ—गुणवान अपने राजा को छोटा समझते हैं और राजा गुणियों को तुच्छ दृष्टि से देखता है। यथार्थ में तो कोई एक दूसरे से बड़ा छोटा नहीं है। सब समान हैं, भगवान के रूप हैं।

१३८ दोहासार सग्रह मे यह दोहा शंकर कवि के नाम से दिया है। उसका पाठ इस प्रकार है।

मथत मथत माखन रह्यो, मह्यो गयो भहराय।
'शकर' सो बहु मोल जो, भीर परे ठहराय ॥

१३९ मनसिज—कामदेव।

फल—यहाँ स्तन से आशय है।

फूल—(१) कमल की माला (२) काम जनित आनन्द।

यथा—रोमावलि कोमल लता, लागी तियके गात।
कुचफल देखत पीय के, अंग अग फूलत जात ॥
[जोधपुर नरेश जसवन्त सिंह]

१४० दिवान—दीवान, मंत्री।

भावार्थ—जिस प्रकार अच्छे राज्य में राजा मंत्री के कथनानुसार कार्य करता है उसी प्रकार मन भी उसी के साथ लग जाता है, जिसका नेत्र आदर करते है।

१४१ महि—धरती।

नभ—आकाश।

सरपंजर किये—तीरों से आच्छादित कर दिये ।

अवसेष—अतुल ।

वैराट—विराट, एक राजा का नाम ।

भावार्थ—जिस अर्जुन ने अपने अतुल पराक्रम से पृथ्वी और आकाश को अपने तीरों से आच्छादित कर दिया था, उसी अर्जुन को एक दिन विराट राजा के घर स्त्री का वेष धारण कर रहना पड़ा था ।

विशेष—श्रीकृष्ण की आज्ञा से अग्नि ने खाडव वन को जला दिया था उस समय उसकी इन्द्र से रक्षा करने के लिये पृथ्वी से स्वर्ग तक अर्जुन ने तीरों का पिंजड़ा बना डाला था ।

और जब पाण्डवों को अज्ञातवास करना पड़ा था, तो अर्जुन स्त्री के वेष में रहकर राजा विराट की कन्या को नृत्य-कला सिखलाते थे ।

१४२ सफरिन—छोटी मछलियाँ ।

सर—सरोवर ।

वक-बालक—बगुले के बच्चे ।

१४३ संभु भए जगदीस—जब देवताओ और दैत्यो ने समुद्र मन्थन किया तो चौदह रत्न निकाले । सब से पहिले विष निकला । उस हलाहल से समस्त पृथ्वी जलने लगी । सब ने मिलकर शंभु भगवान की विनती की । उन्होने जगत की रक्षा के निमित्त विष का पान कर उसे कठ में धारण कर लिया । इसीलिये वे जगदीश कहलाये ।

राहु कटायो सीस—जब समुद्र मे से अमृत निकला तो देव दानव झगड़ने लगे । भगवान ने मोहिनी रूप धारण कर, सब को पंक्ति में बिठला कर पहिले देवताओं को अमृत बाँटा । दैत्य बाट ही देखते रह गये । राहु ने देवता का रूप धर कर धोखा दे अमृत-पान कर लिया । भगवान को जब इसका पता लगा तब उन्होंने तुरंत सुदर्शन से उसका सिर काट दिया । परन्तु उसका रुंड राहु और सिर केतु अमर हो गए ।

१४४ पाठान्तर—माह मास को भिनुसरा ।

१४५ कितो—कितना ही।

बढ़िकाम—महत्त्वपूर्ण काम।

बसुधा—पृथ्वी।

बावनै—बामनावतार जो शरीर से बहुत नाटा था। विष्णु भगवान ने वामन का अवतार ले दैत्यराज बलि से तीन पग पृथ्वी का दान माँगा और फिर विराट रूप धर कर पृथ्वी और त्रैलोक्य नाप लिये।

१४६ मुकरि—बात से नट जाना।

माँगत आगे सुख लह्यो—याचना करने के पूर्व ही राज्य मिल गया। श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण को, लंका का राज्य, बिना उसके माँगे, दे दिया था।

१४७ कर—करने वाला।

जल—स्वाँति नक्षत्र की वर्षा।

व्याल—सर्प। देखो दोहा नं० २२।

१४८ मुनि नारी—गौतम की स्त्री अहिल्या।

पाषान—पत्थर।

ही—थी।

गुह—जो श्रीरामचन्द्र जी को वन में मिला था।

मातंग—चाण्डाल।

तारे—तार दिये।

तीनों मेरे अंग—मुझ में तीनों के अवगुण विद्यमान हैं। रहीम कृत संस्कृत श्लोक देखिए उसी का भावार्थ इस दोहे में है।

१४९ कचन—बाल।

१५० मन्दन—नीच पुरुष।

सराहि—शान्त होना, ठंढा होना।

मरहा—जंगल का भूत; जो पुरुष बाघ द्वारा मारा जाता है उसके लिये एक चबूतरा बना कर उसकी आत्मा की पूजा की जाती है कारण

कि उसकी आत्मा दूसरे जन्म में मनुष्य भक्षी बाघ का रूप धारण कर अधिक उत्पात मचाती है।

भावार्थ—नीच पुरुषों के मरने पर भी उनके अवगुणों का समूह शान्त नहीं होता है। जिस प्रकार कि बाघ द्वारा मारे गये पुरुष की आत्मा भी मनुष्य-भक्षी बाघ का रूप धारण कर अधिक उत्पात मचाती है।

१५१ अवनि—पृथ्वी।

कूपवंत—जल का गहरा कुण्ड।

सरिताल—झील।

मनसा—गंगा; इच्छा।

मराल—हंस।

यथा—यद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तासु रसताल।
सतत तुलसी मानसर, तदपि न तजहि मराल॥ [तुलसी]

१५२ प्रानन बाजी राखिए—प्राण तक दाँव पर लगा दीजिए अर्थात् प्राण देने को भी तैयार रहिए।

१५४ नवा—झुका हुआ, नम्र, विनीत।

नए ते—झुकने से।

भावार्थ—चीता झुक कर आक्रमण के लिए उछलता है। चोर वा दुष्ट मनुष्य विश्वासघात करने के लिए मीठा बोलते हैं और कमान झुकने पर ही तीर फेंकती है। इन तीनों का झुकना अनर्थकारी है।

यथा—उज्ज्वल नवते जनि गनहु, जौं उर सुद्ध न होइ।
चीता चोर कमान सों, नवहिं आपनी गोइ॥ [गुण गजनामा]
नवन नीच की अति दुखदाई। जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई॥
[तुलसी]

१५५ भावार्थ—रहीम कहते हैं कि मेरा मन जल कर भस्म हो गया प्रतीत होता है कारण कि वह जिसमे लगाया जाता है वही रूखा हो जाता है।

१५६ दुवौ—दोनों।

१५७ तुरंग—घोड़ा।

दाग—घुड़सवार सेना में सवार का नंबर घोड़े के शरीर पर गरम लोहे से दाग दिया जाता है। कहते हैं कि यह प्रथा राजा टोडरमल ने अकबर के राज्य में चलाई थी।

१५८ सॉति—शान्ति।

उवत—उदय होता है।

अथवत—डूबता है। देखो दोहा न० १५।

१५९ जननी जठर—मॉ के पेट मे।

१६० कानि—चाल, रीति वा मर्यादा।

सैंजन—सहजनी, वृक्ष विशेष जिसके फल की तरकारी बनती है।

१६१ गोत—गोत्र, वंश, जाति।

भावार्थ—मृग चन्द्रमा के रथ को खींचते है, इसीलिये पृथ्वी के मृग भी उछलते हैं, और वाराह (भगवान) हिरण्याक्ष को मारकर पाताल से पृथ्वी लाये थे इसीलिए सूअर धरती खोदते हैं। वश और जाति के अनुसार गुण, कर्म स्वभाव होते है।

१६२ अनखाए—बिना भोजन किये हुए।

अनखाय—अकुलाय।

१६३ बिरछ—वृक्ष।

सेंहुड़—पौधा विशेष, जिसके पत्ते कुछ लम्बे होते हैं। इसका रस दवाई के रूप मे बच्चों को दिया जाता है।

कुंज—कटीला वृक्ष।

करीर—करील।

१६४ भावार्थ—बधिक के बाण से आहत मृग का रक्त घातक हो जाता है। रक्त-बिन्दुओं से बधिकों को मृग के भागने के मार्ग का पता चल जाता है।

यथा—कुसमय मीत काको कवन।
व्याध मिरगा बाण बेध्या, कोटि कानन गवन ॥
अंग शोणित भयो बैरी, खोज दीनो तवन ॥ [सूरदास]

१६५ गेह—घर।

१६६ बाजत है—मृदंग की ओर लक्ष्य है। देखो दोहा न० ५३

१६७ सभा विलास में यह दोहा सम्मन कवि के नाम से दिया गया है।

भावार्थ—एक दिन वह था जब हृदय से हृदय मिलाते समय गले का हार नहीं सुहाता था और अब हवा ऐसी बदली कि दोनों के बीच पहाड़ो का अन्तर हो गया।

हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा।
इदानीमन्तरे जाताः पर्वताः सरितो द्रुमाः ॥ [हनुमन्नाटक]

१६८ करिया—काला। देखो सोरठा न० २७१।

१६९ देखो दोहा नं० १८२। भाव-सादृश्य है।

यथा—(१) हितहू भलो न नीच को, नाहिन भलो अहेत।
चाट अपावन तन करे, काटि स्वान दुःख देत॥ [वृन्द]
(२) बिरचै कॉटे पॉव को, रॉचै चाटै मुक्ख।
'वाजिद' स्वान की दोसती, दुहू परे है दुक्ख॥ [गुणगज-नामा]

१७० भावार्थ—चिता तो मृतक को जलाती है, परन्तु चिन्ता उससे भी बढ कर है जो जीते जी जलाती है।

यथा—चिता चिन्ता समाख्याता विन्दुमात्र विशेषतः।
चिता दहति निर्जीव चिन्ता दहति सजीवकं॥

इस भाव के और भी श्लोक हैं।

१७१ सेस—(१) सिर पर पृथिवी धारण करने वाले शेष नाग। (२) बचा खुचा, बाकी बचा वा कुछ नहीं!

१७२ करि—हाथी।

धाक—रोब।

भावार्थ—समर्थ होकर भी जो भगवान से डरते हैं, उनकी तुलना हाथी से की गई है।

१७३ रीते—खाली रहने पर, भूखे।

अनरीते—अनीति, पाप। 'बुभुक्षितं किन्न करोति पाप'।

बिगारत दीठ—बदमाशी करता है।

१७४ कसकत—कष्ट देती है।

समय चूक की हूक—अवसर निकल जाने का पछतावा।

१७५ लबार—झूठा, गप्पी।

पत-राखन हार—लाज रखनेवाला।

भावार्थ—यदि श्रीकृष्ण बात रखने वाले है तो रहीम का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता; चाहे वह जुआरी हो, चोर हो, वा लबार हो—क्योंकि भगवान ने जुआरी शकुनी से पाण्डवों की रक्षा की थी, ग्वाल-बालों की गायों को ब्रह्माजी ने चुराया था तब भगवान ने उनको छुडाया था और लबार दुःशासन से द्रौपदी की रक्षा की थी।

१७६ खोटी आदि की—जिसका आरम्भ बुरा है।

परिनाम—अन्त, नतीजा।

तम—अँधेरा।

१७७ आपु—अहंकार।

भावार्थ—यदि मन में अभिमान वा अहंकार है तो भगवान नहीं हैं, और जो भगवान हैं तो मन में अहकार को स्थान नहीं। दोनों एक साथ मन में नहीं रह सकते।

यथा—जब मैं था तो हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
प्रेम-गली अति साँकुरी, तामे दो न समाहिं॥ [कबीर]

१७८ घरिया रहँट की—खेतों में पानी सींचने की एक प्रकार की चर्खी का मिट्टी का पात्र।

रीति ही—खाली ही।

यथा—'हरिवश' अरहट की घरी, ज्यों कुमीत की ईंठ।

जब खाली तब सनमुखी, जब सभर तब पीठ ॥ [गुणगजनामा]

१७९ दिया—दीवला।

भावार्थ—सीधी उँगली से घी नहीं निकलता।

१८० दिनन को फेर—भाग्य का चक्र, बुरे दिन।

१८१ दमामो—धौंसा, नगाड़ा।

यथा—कैसे छोटे नरनुते, सरत बड़न को काम।

मढ्यो दमामो जात क्यों, कहि चूहे के काम ॥ [बिहारी]

१८२ जगत-बड़ाई—लोकप्रियता वा जगत मे प्रशंसा।

नाभाजी कृत भक्तमाल के आधार पर प्रियादास के पुत्र वैष्णवदास-कृत 'भक्तमाल प्रसग' मे 'व्यास' कवि के नाम से यह दोहा है—

'व्यास' बड़ाई जगत की, कूकर की पहिचान।

प्रीति करे मुख चाटई, बैर करे तन हान ॥

१८३—रहिमन जग...नैन—जगत मे अपने जीवन में ही किसी को बड़ाई नहीं मिली।

अछत—जीते रहने पर भी।

गथ—कोप, धन। रावण के रहते ही बन्दरों ने लंका लूट ली थी।

१८४ जाके बाप को—मेघ का पिता समुद्र।

गैल—मार्ग।

कालिमा—काली।

१८६ कहिगै सरग पताल—उलटा सीधा बक गई।

१८७ उखारी—ऊख का खेत।

रसमरा—ईख के खेत में ईख के साथ उगनेवाला पौधा विशेष।

भावार्थ—अच्छी संगति से दुष्ट लोग नहीं सुधरते।

१८८ कहै वाहि के दाव—उसी की हाँ में हाँ मिलावे।

बासर—दिन।

कचपची—छोटे-छोटे तारो का समूह विशेष; कृत्तिका नक्षत्र।

भावार्थ—यदि यहाँ ठहरना चाहते हो तो मालिक की हाँ में हाँ मिलाओ। वह दिन को रात कहे, तो तुम आकाश में तारे दिखाओ।

अगर शहरोज़ रा गोयद शब अस्त ईं।
बपायद गुफ़्त ईनक माहो परवी॥ [शेखसादी]
जाट कहे सुन जाटनी यही गाँव मे रहनो।
ऊँट बिलाई ले गई तो हाँजी हाँजी कहनो॥

१८९ ठठरी धूरि की—मनुष्य देह।

गाँठ युक्ति की—ईश्वर द्वारा गठित युक्ति पूर्ण प्राण की गाठ।

१९० पयान—चल देना।

१९१ परे मामिला—काम पड़ने पर, मुकदमा लगने पर।

१९२ करी—हाथी।

भावार्थ—हे प्रभु! आपने मेरे साथ वही बर्ताव किया है जो अन्य हाथियो ने गजेन्द्र के साथ किया था। विपत्ति मे उसके साथियों ने उसका साथ छोड़ दिया था।

१९४ मुँह स्याह—खिजाब लगा कर बाल काले करना।

परतिया—पराई स्त्री।

१९५ दरिद्रतर—अति दरिद्र।

भावार्थ—दानी गरीब भी हो तो उससे याचना करनी चाहिए। जैसे नदियों के सूख जाने पर लोग कूओं को नदी-तल मे खुदवाते हैं।

१९६—बड़ेन किए घटि काज—अपनी हैसियत से छोटे काम किये। पाण्डवों ने अज्ञातवास में अलग-अलग रूप धारण कर राजा विराट के यहाँ नौकरी की थी और राजा नल ने जूए से अपना सर्वनाश कर, दमयन्ती को छोड़ राजा ऋतुपर्ण की घुड़शाला मे नौकरी की।

१९९ कामादिक को धाम—जो सब पापों का घर है।

२०० विथा—व्यथा, दुःख।

गोय—गुप्त, छिपाकर।

अठिलैहैं—हँसी करेंगे।

२०१—देखो दोहा नं० ५८

२०२ यथा—जिहि प्रसंग दूखन लगे, तजिये ताकों साथ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलारिन हाथ॥ [वृन्द]

२०३ विकार—हानि।

संपुटी—जल-घड़ी का पात्र।

घरिआर—घड़ियाल, घंटा।

भावार्थ—जलघड़ी का पात्र तो जल ग्रहण करता है वा चुराता है और मार पडती है घटे पर।

२०४ शिवि—राजा शिवि जब बानबे यज्ञ कर चुके, तब इन्द्र विघ्न डालने के हेतु अग्नि को कबूतर और स्वय बाज बन कर उसका पीछा करता हुआ यज्ञ में पहुँचा। कबूतर प्राण-रक्षा के लिये राजा शिवि की गोद मे जा गिरा। जब बाज ने अपना भक्ष्य कबूतर माँगा तो राजा कबूतर के बराबर अपना माँस तोल कर देने लगा। परन्तु राजा का सारा माँस तुल गया और फिर भी कबूतर के बराबर न हुआ। अन्त मे ज्योंही राजा अपना सिर काट कर तराजू पर रखने लगे त्योंही भगवान प्रगट हो गए और राजा को अपने लोक भेज दिया।

दधीचि—देवता गण जब वृत्रासुर को न हरा सके और वह दानव उनके सब शस्त्रों को निगल गया तब देवताओ ने घबरा कर भगवान की स्तुति की और यह वर प्राप्त किया कि दधीचि ऋषि की हड्डियो का अस्त्र बना कर वे वृत्रासुर को मार सकेंगे। देवताओ ने दधीचि ऋषि से प्रार्थना की और उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक देह त्याग कर हड्डियाँ दे दी। देवताओ ने उनका शस्त्र बना कर अन्त मे वृत्रासुर को मार डाला। परोपकार के लिये त्याग की ये दोनो कथाएँ बडी प्रसिद्ध है।

करत न यारी बीच—मोह-माया नहीं करते। पूर्ण त्याग दिखाते हैं।

२०५ पानी—मोती की चमक, मान, प्रतिष्ठा, कानि, जल।

सून—शून्य, कुछ नहीं।

ऊबरे—बचे।

२०६ पैंड़ा—मार्ग।

निपट—अत्यन्त, एकदम।

सिलसिली—फिसलनी, चिकनी।

बिछलत—फिसलता है।

पिपीलि—चींटी।

२०८ सराहिए—बड़ाई कीजिए।

भावार्थ—चूने और हलदी का सा मेल हो उस प्रीति की प्रशसा करनी चाहिए। चूना अपनी सफेदी और हलदी अपना पीलापन छोड कर दोनों लाल-रग हो जाते है।

यथा—हरद चून रँग पय पानी ज्यो, दुबिधा दुहु की भागी। [सूर]

२०९ बिआधि—व्याधि, आफत, बीमारी।

यथा—फूले फूले फिरत हैं, आज हमारो ब्याव।
'तुलसी' गाय बजाय के, देत काठ में पाँव॥ [तुलसी]

२१० भेषज—दवाई, इलाज।

राम भरोसे जे रहे, परबत पै हरियाँय।
'तुलसी' बिरवा बाग के, सींचे हू मुरझाँय॥ [तुलसी]

२११ अगम्य—जो मन बुद्धि से परे हैं। ईश्वर-विषयक ज्ञान।

२१२ आदि—शुरू।

बावनै—वामनावतार हुआ तो छोटा ही था परन्तु उसने बलि को जब ठगा और तीन पैर में ही समस्त भूमडल और स्वर्गादि नाप डाला तब शरीर का आकार अत्यन्त बढ़ा लिया। पर नाम वामन ही रहा।

२१५ मझाव—पैठाना, डालना ।

२१६ अनूप—निराली, वेमिसाल ।

मख—यज्ञ ।

२१७ मैन-तुरंग—मोम का घोड़ा ।

पावक—अग्नि ।

पंथ—मार्ग ।

यह दोहा लालन कवि के नाम से भी प्रसिद्ध है ।

२१८ बावन आँगुर गात—वामन जी का शरीर बॉवन अगुल का था । दोहा २१६ मे भी यही भाव है !

यथा—सब ते लघु है मॉगिबो, जामे फेर न सार ।
वलि पै जाँचत ही भए, वामन तन करतार ॥ [वृन्द]

२१९ पछोरना—फटकना ।

गरुए—भारी ।

हलुकन—हलके वा नीच मनुष्य ।

गरुवे—गम्भीर, सज्जन ।

२२० गोत—वंश ।

बड़री—बड़ी ।

लखि वढ़वार सुजातिया अनख धरे मन माहि ।
वडे नैन लखि अपुन पै, नैना सही सिहाहि ॥ [रसनिधि]
बढत आपनो गोत को, और सबे अनखाँहि ।
सुह्रद नैन नैना वड़े, देखत हियो सिहाहि ॥ [रसनिधि]

२२२ सील—शील, सम्मान ।

समूच—पूरा । दोहा १६० में भी यही भाव है ।

२२३ रहिला की भली—चने की रोटी अच्छी ।

देखो सोरठा—नं० २७६

परसत—छूते ही ।

२२४ तरैयन—तारे।

भावार्थ—वही राज्य प्रशंसा के योग्य है जो चन्द्रमा के समान सुखदायक हो। सूर्य तो नक्षत्रों को अदृश्य कर अकेला ही तपता है। कहते है कि यह दोहा रहीम ने उस समय लिखा था जब जहाँगीर ने राज्य सिंहासन के लिये अपने भाइयों का वध किया था।

२२५ खर—खली जो पशुओं को खिलाई जाती है।

गुर—गुड़।

गुलियाए—जबरदस्ती गले में डालकर खिलाना।

'दोहासार संग्रह' में इस प्रकार दिया है—

रामनाम लीनो नहीं, रह्यो विषय लपटाय।
घास चरै पशु आपसों; गुड़ गाल्यो ही खाय॥

२२६ नै चलो—नम्रतापूर्वक चलो।

२२७ पौर—ड्योढ़ी, पौरी, मर्य्यादा।

प्रीतिकी पौरि—मित्रता का बर्ताव।

मूकन—मुक्का।

मूकन मारत...दौरि—पैर दाबने के बहाने जो पैरों पर मुक्के भी मारे जॉय तो भी निद्रा शीघ्र आ जाती है।

२२८ घट गुन सम—घड़े और रस्सी के समान।

२२९ राग सुनत...खाय—राग को सुननेवाला और दूध पीनेवाला सर्प (स्वभाव में मृदु होना चाहिए परन्तु) भी अपने हितु को काट लेता है।

यथा—दुष्ट न छाँड़े दुष्टता, पौखे राखे ओट।
सरपहिं केतो हित करो, चपै चलावै चोट॥ [वृन्द]

२३० ढारत ढेकुली—गराड़ी द्वारा कूँए से पानी खींचते हैं।

२३१ चोरी करि होरी रची—होली के लिए चोरी कर ईंधन इकट्ठा किया जाता है।

२३२ जस—यश।

विषान—विषाण, सींग। चाणक्यनीति के श्लोक के आधार पर यह दोहा रचा गया है—

येषां न विद्या न तपो न दान
ज्ञान न शील न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुविभारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

२३४ भावार्थ—जिसने याचना की वह मरे मनुष्य के समान है परन्तु जिन्होने याचक को कोरा जवाब दिया उन्हे उससे भी पहिले मरा समझना चाहिए। मॉगना बुरा और मॉगने वाले को न देना उससे भी बुरा है।

२३५ 'अहमद' गति अवतार की, सबै कहत संसार।
बिछुरे मानुस फिर मिलें, यहै जान अवतार ॥ [अहमद]

२३६ सहिकै—सहन करके।

बिसाहियो—मोल लेना।

२३८ जम के किंकर—यमदूत।

कानि—प्रतिष्ठा।

२३९ उपाधि—काम, क्रोधादि।

बादि—व्यर्थ की बकवाद।

यथा—रामनाम जान्यो नहीं, जान्यो विषय सवाद।
तुलसी नरवपु पाइ कै, जनम गॅवायो बाद ॥ [तुलसी]

२४० गोत—वंश, गोत्र।

भावार्थ—सबसे हिलमिल कर रहना ही ठीक है, क्योंकि शत्रु, हितु, मित्र और कुल जो इस जन्म मे है वे अगले में न होंगे।

२४१ भावार्थ—रूप कथा पद सुन्दर वस्त्र, सोना, दोहा और रत्न का वास्तविक मूल्य सूक्ष्म दृष्टि से देखने से ही जाना जाता है।

२४३ रौल—हुल्लड़, आन्दोलन।

इस दोहे मे रहीम का नाम नहीं है।

२४४ आनकी आन—कुछ का कुछ, दूसरी ही बात।

मगरू स्थान—मगध देश मे एक स्थान।

ऐसा विश्वास है कि काशी में मरने से मुक्ति होती है क्योंकि शिवजी स्वयं ज्ञानोपदेश करते हैं, और मगहर में मरने से मुक्ति नहीं होती। भक्त-माल मे ऐसी एक कथा है कि एक पुरुष काशी-वास करने लगा और इसलिए उसने अपने हाथ पैर काट डाले कि अंत समय वह काशी से बाहर न चला जाय। परन्तु दुर्भाग्य से एक चंचल घोड़ा उसे मगहर में ले गया और वहीं उसकी मृत्यु हुई।

२४५—यह दोहा चाणक्यनीति के एक श्लोक के आधार पर है—

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितम् द्रुमालये पक्व फलाम्बु भोजनम्।

तृणानि शैय्या परिधान वल्कलम् न बंधु मध्ये धनहीनजीवनम्॥

२४७ अवधि—सीमा, अंत।

खद्योत—पटवीजना, जुगनू।

भावार्थ—विरहरूपी काले मेघ के अन्त मे आशारूपी प्रकाश की झलक है। जैसे भादो की अँधेरी रात में पटवीजने चमकते हैं, उसी तरह आशा का थोड़ा प्रकाश विरह के अंधकार मे है।

२५० अटकै काम—काम पढ़े।

२५१ लसकरी—सैनिक।

सेल्ह—भाला।

जगीरै—जागीर।

२५३ सभा दुसासन......भीम—द्रौपदी का चीर दुःशासन ने भरी सभा मे खींचा और भीम गदा लिये देखा किये। समय का फेर!

२५५ देखो दोहा नं० १७४।

२५७ पच्छ—पख।

"पर दार उड़े फिरते है वे पर का खुदा हाफ़िज़ ।"

२५८ रथ-कूबर—रथ का वह भाग जिस पर जूआ बाँधा जाता है।

२५९ तुरिय—मोक्ष की अवस्था ।

परा—श्रेष्ठ, सपूत ।

भावार्थ—श्वाँस, जिससे सोऽहम् की ध्वनि निकले और योग की ऊँची अवस्था प्राप्त हो, निश्चल चित्तवाली स्त्री और घर मे सपूत बेटा ये तीनो पवित्र हैं ।

'शिवसिंह सरोज' में यह दोहा 'रज्जब' के नाम से दिया है ।

२६० जोखिता—योगीपन ।

भावार्थ—साधु लोग साधुता और जती लोग योगीपन की प्रशसा करते है, परन्तु सच्चे शूर की प्रशसा उसका वैरी करता है ।

२६१ यह दोहा 'अहमद' के नाम से भी मिलता है ।

यथा—या दुनिया मे आइकै, छोड़ि देइ तू ऐंठ ।

लेना है सो लेइले, उठी जात है पैठ ॥ [कबीर]

२६२ संतत—सदा रहनेवाली ।

यथा—"संपत के सब ही सगे, दीनन को नहीं कोइ" ।

२६३ संपति भरम गँवाइ के—किसी चक्र में पड़ पैसा खो देने पर।

भावार्थ—जब किसी व्यसन के फेर में पड़कर कोई मनुष्य अपना धन खो बैठता है तो उसकी दशा दिन के ज्योतिहीन चन्द्रमा की सी हो जाती है ।

२६४ लटी—बुरी ।

यथा—जासों जाको हित सधै, सोई ताहि सुहात ।

चोर न प्यारी चाँदनी, जैसे कारी रात ॥ [वृन्द]

२६५ सोम—सीमा, हद ।

२६६ भुवन भरत—सूर्य का प्रकाश सब जगह फैलता है ।

घटि—क्षुद्र ।

यथा—मूरखगन समुझैं नहीं, तो न गुनी में चूक।
कहा भयो दिन को विभौ, देखै जो न उलूक ॥ [वृन्द]

२६७ सर—शर, तीर।

पूर—चढ़ाकर।

भावार्थ—जैसे तीर चढ़ाकर अपनी ओर खींचते हैं और फिर कमान से दूर फेंक देते है। भगवान ने मुझे उसी प्रकार एक बार तो अपनी ओर खींचा अथवा कृपा की और फिर दूर फेंक दिया (विस्मृत कर दिया) भक्तमाल में कथन है कि श्रीनाथजी के मन्दिर मे जाने में रुकावट होने पर यह दोहा रहीम ने कहा है।

२६८ बसात—शक्ति के अनुसार।

२६९ कदाचि—कदाचित्। देखो दोहा न० १२१।

२७० ढिग—पास।

बढ़िहू—बडा होकर भी।

तार—ताड़ का वृक्ष।

भावार्थ—जिस बडे आदमी से न तो कोई आश्रय प्राप्त होता है और न उससे लाभ ही मिलता है वह तार या खजूर के वृक्ष के समान है। ये वृक्ष ऊँचे होते है, छाया दूर और थोड़ी होती है। फल भी बहुत ऊँचे पर होते हैं।

सोरठा

२७१ तातो—जलता हुआ।

सीरे पै—ठंडा होने पर। देखो दोहा न० १६८।

यथा—'अहमद' तज्यो अँगार ज्यों, छोटे को संग साथ।
सीरो कर कारो करे, तातो जारे हाथ ॥ [दोहासारसंग्रह]

२७२ साहब—प्रभु, ईश्वर।

२७३ परतीति—मालूम होता है। देखो दोहा नं० ६० का पूर्वार्द्ध।

यथा—प्रीति जो सीखो ईख सों, जहाँ जुरस की खान ।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यही प्रीति की बानि ॥ [सभाविलास]

२७४ पखान—पत्थर ।
सीझैं—नम्र होना । यह सोरठा दोहे के रूप में भी प्रसिद्ध है ।
२७५ बहरी—शिकारी पक्षी विशेष ।
तिरै—उतरै ।
२७६ अमी—अमृत ।
बरु—अच्छा है ।
२७७ हेरनहार—देखनेवाला (यह 'अहमद' के नाम से भी प्रसिद्ध है)
यथा—कौन कतरा है जो दरिया नहीं हो सकता है । [चकबस्त]

नगर शोभा

१ आदि रूप—आदि पुरुष, परमेश्वर ।
दुति—द्युति, छबि, शोभा ।
रसन—रसना, जिह्वा ।
२ काँति—कान्ति, शोभा ।
३ पाय—पद, चरण ।
४ परजापति—प्रजापति, सृष्टिकर्ता ।
परमेश्वरी—दुर्गा, शक्ति ।
५ रतिराज—कामदेव ।
पचि—पकाकर ।
६ पारस पाहन—पारस पत्थर, स्पर्श मणि ।
९ कैथनि—कायस्थ जाति की स्त्री ।
पाती—पत्री, चिट्ठी ।
मैन—कामदेव ।

सैन—संकेत, इशारा।
१० बरुनि बार—पलक के बाल।
मसि—स्याही।
१२ नित्र—नेत्र, नयन।
१३ बरइन—तमोलिन, पान की खेती करनेवाली, पानवाली।
१५ सुनारि—स्वर्णकार की स्त्री, सुनारिन।
सुनारि—(सु+नारि) सुन्दर या अच्छी स्त्री।
१६ रहसनि—केलि, क्रीड़ा।
१७ पेम—प्रेम।
पेक—छोटा व्यापारी, पैकार, फेरीवाला।
गरुवे—भारी।
१८ डाँडी—तराजू की लकड़ी जिसमे पलड़े लटकाये जाते हैं।
२० मार—कामदेव।
२१ घनवा—कपूर।
उनहार—समानता, बराबरी।
२२ लेजू—रस्सी।
२३ भाटा—बेगन।
कौंजरी—शाक भाजी बेचनेवाली।
२४ नियरात—पास जाना, समीप जाना।
२५ बनजारी—बनजारा नामक ग्रामीण जाति की स्त्री।
जेहरि—पैर मे पहिनने का आभूषण।
२६ लोइन—लोचन।
लौन—नमक, सुन्दरता।
२७ वर—पति।
कौरी—कुमारी।
बैस—अवस्था, आयु।

सरवा—सकोरा, मिट्टी का पात्र विशेष ।

२८ वाक—वचन, शब्द ।

भमे—भ्रमण करना, घूमना ।

२९ लुहार—लोह के समान, लोहित, लाल, रक्त, रुधिर-रंजित ।

३० ताइके—गरम करके ।

३२ गजक—पापड़, दालमोठ, चाट आदि चरपरी वस्तु जो मदपान के बाद मुख का स्वाद बदलने के हेतु खाई जाती है ।

३३ दह्यो—दही ।

गोरस—(१) दूध (२) इन्द्रियों का सुख ।

यथा—गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्ह जू नेकु न पैहो।

—(रसखान)

३४ कोल—इकरार, वायदा वचन देना !

३५ काछिन—शाक, तरकारी बेचनेवाली ।

३६ भाटा—बैंगन ।

मूरा—मूली, शाक विशेष ।

लोका—घीया, शाक विशेष ।

३७ रकत—रक्त, रुधिर ।

३८ बरुनी—पलकों के बाल ।

लेह—कदाचित् पाठ 'लेइ' है ।

टेइ—धार पेनाना अथवा तेज करना ।

यथा—कुबरी करी कुबलि कैकेई ।
कपट छुरी उर-पाहन टेई ॥—(तुलसी)

३९ तवाखनी—(तवाक—बड़ा थाल) स्त्री विशेष, जो शोरवा इत्यादि बड़े थाल मे रखकर बेचती है ।

सुरवा—शोरवा ।

४० परसो—परोसा हुआ, थाली में रख सामने खाने के हेतु लाया हुआ भोज्य पदार्थ।

अघात—तृप्त होना।

४१ बेलन—कोल्हू की लाट।

४२ करुवो—कड़वा।

४३ पाटंबर—रेशमी वस्त्र।

पटइन—पटवा की स्त्री।

४४ सात—समेत, साथ।

फूंदी—इजारबद की गाँठ।

फोंदना—फूल के आकार की गाँठ, झब्बा।

४७ गुमान—गर्व, मान, घमंड।

कमागरी—कमान बनानेवाले की स्त्री।

४९ तीरगरन—तीर बनानेवाले की स्त्री।

५० सरीकन—सलाख, छड़ जिसके तीर बनाते हैं।

सरेस—एक चिपकने वाला पदार्थ जो पशुओं की खाल, खून, सींग, हड्डी आदि से बनाया जाता है।

५१ छीपनि—कपड़ा छापनेवाली, छीपी जाति की स्त्री।

५२ मैन—कामदेव।

५३ सिकलीगरनि—हथियार माँजकर चमकाने वाली।

औसेर—उबटन, सिकल करने के पहिले जो चिकनाई जाती है।

मुसकला—धातु चमकाने के लिए मसाला रगड़ने का एक औजार विशेष।

५४ अनंग—कामदेव।

५५ सका—शंका।

सक्कनि—भिश्तिन, पानी भरनेवाली।

सरम—लाज।

चिबुक—ठोड़ी।
५७ गांधिनि—सुगंधित तेल तथा इत्र बेचने वाली।
५८ चोवा—चोआ, अनेक सुगंधित द्रव्यों का रस।
चिहुरन—केश, बाल।
६१ तुरकिन—तुर्क देशवासिनी।
तरकि—बिगड़ना, झुंझलाना।
६२ जार—जाल, फंद।
प्राण इजारे लेत है—प्राणों पर अधिकार कर लेता है।
इजार—सुथना, पायजामा।
६४ सिगी—योगियो का वाद्य विशेष जो सीग का बनता है।
मुद्रा—मुद्रा।
६५ हटकी—रुकी रहना, स्थिर होना।
६९ चेरी—चेली दासी, राजपूतानावासी एक जाति विशेप की स्त्री।
माती—उन्मत्त, मतवाली।

जॅभुवाइके—आलस्य तथा निद्रावश विशेष प्रकार से सॉस लेने की क्रिया करके।

अॅगराइ—देह तोड़ना, देह तानकर सुस्ती दूर करना।
७१ नटबंदनी—नटिनी, कलाबाजी दिखाने वाली।
७५ कंचनी—वेश्या।
७७ विभासे—विभास नामक राग विशेष को।
७८ अहेरी—शिकार।
८१ पातरी—पातुरी।
८४ जुकिहारी—जोंक लगाने वाली।
८६ खटकनि—खटीकनी, खटिक जाति की स्त्री।
८८ कुन्दी—लकड़ी की मोगरी से इस्त्री किया हुआ वस्त्र।
८९ महिमही—मिट्टी मिला जल, कीचड़।

बसन बसेधी बास—कपड़ा में बसी हुई बास !

९० सवनी गरनि—साबुन बनाने वाली।

९३ भूहन—भृकुटी, भौंह।

आरे—लकड़ी चीरने की दाँतीदार लोहे की पटरी।

९४ कुन्दन सी—सोने के पत्र के समान चमकती हुई।

कुन्दीगरनि—कपड़ों पर लकड़ी की मोगरी द्वारा इस्त्री करने वाली।

९५ मोगरी—कूटने के लिए लकड़ी का टुकड़ा।

९६ धुनियाइन—रूई धुनने वाली।

९८ कोरनि—कपड़े बुनने वाली नीच जाति।

कूर—निर्दय, अरसिक।

ताना—वस्त्र की लम्बाई के अनुसार फैलाया हुआ सूत। कपड़े बुनने के समय उस पर बार वार ताना डालने के लिये मुँह में पानी भर कर कुल्ली द्वारा सब जगह छिड़का जाता है।

१०० दबगरनि—कुप्पा बनाने वाली।

१०१ कुपा—कुप्पा।

१०२ नगारचनि—नक्कारा धौंसा बजाने वाली।

१०४ दलालनी—दलाली करने वाली।

१०६ ठठेरनी—बर्तन बनाने वाली।

१०७ गडुवा—लोटा, बड़े पेट का पात्र।

१०८ कागदनि—कागज बनाने वाली।

१०९ गुड़ी—पतंग, चंग।

११० मसिकरनि—स्याही बनाने वाली।

मसि—स्याही।

खिन—थोड़ी।

चखटौना—आँखों द्वारा किया गया जादू।

११३ सिचान—पक्षी विशेष, बाज।

११४ जिलोदारनी—जिलेदार की स्त्री।
११६ भंगेरनी—भाँग बेचने वाली।
११७ हरुवेई—सुगमता पूर्वक ही।
११८ बोजागरनि—मदिरा बेचने वाली।
११९ मत—मति, बुद्धि।
१२० चीतावनी—चीता पालने वाली।
१२१ वैसिगरूर—यौवन का गर्व।
लाक—कमर, कटि।
१२२ कठिहारी—लकड़हारिन।
१२४ घासिनि—घास बेचने वाली।
१२६ डफालिनी—डफ बजाने वाली।
१२८ गड़िवारिन—गाड़ी चलाने वाली।
शिव-वाहन—बैल।
१३१ काँछ—पहिन कर, धारण कर।
बाला—स्त्री।
कलाव—हाथी के गले की रस्सी।
ताव—उत्साह, जोश, हिम्मत।
१३२ सरवानी—ऊँट चलाने वाली।
छाग—बकरी।
१३३ मुहार—ऊँट की नकेल।
१३४ नाल वंदिगी—घोडे की नाल बाँधने वाली।
नाल—पास।
नाल—घोडे के सुम नीचे लगाने का अर्धचन्द्राकार लोहे का टुकड़ा।
१३५ चिरवादारनि—साईस।
खरहरा—छोटे दाँतो की लोहे की कघी।

१३६ मूठी—घोड़े के सुम और टखने के बीच का भाग, पतली, क्षीण। कटि की क्षीणता की उपमा मूठ से दी गई है।

खीन—क्षीण, पतली।

१३७ लुबधी—लोभी, आकाँक्षी।

लुगरा—वस्त्र, कपड़े।

१३८ गदहरा—गधा।

१३९ लेत चलाओ चाम के—चमडे का सिक्का चलाना चाहती है।

१४० अघोरी—उलटा चमड़ा।

१४१ चूहरी—मेहतरानी, भङ्गिन।

बरवै नायिका भेद

१ तुलै—तुल्यता, योग्यता, समता।

रसकंद—रस की खानि, रसमूल।

२ बेधक—छेदनेवाला, हृदय को चीरनेवाला।

अनियारो—तीक्ष्ण, पैना।

बान—वाण, तीर।

३ सरदवा—शारदा, सरस्वती।

बरैवा—बरवा नामक छंद विशेष, इसे ध्रुव अथवा कुरंग भी कहते हैं। इसका लक्षण इस प्रकार है—

'विषमनि रवि कल बरवै, सम मुनि साज।'

खोरि—खोट, दोष, अवगुण।

४ कोरिवा—कोर

पैंजनिया—पैर में पहिनने का बजनेवाला आभूषण।

मग ठहराय—मार्ग में चलने में अटकती है।

५ किनरिया—किनारी ।

बिथुरे—खुले हुए ।

यह बरवै हमारी तथा पं० कृष्णविहारीजी की प्रति में नहीं है । शिवसिंहजी तथा अन्य लेखकों ने इसे रहीम कृत माना है ।

६ नवेलिअहिं—नवेली स्त्री, नायिका को ।

मनसिज बान—कामदेव के बाण, कामजनित विकार वा पीड़ा ।

उरजवा—उरोज, कुच ।

दिग—दृग, नेत्र, चितवन, दृष्टि ।

तिरछान—तिरछी होने लगी ।

७ करेजवा—कलेजा, हृदय ।

लाइ—अग्नि की लपट, आँच, ज्वाला ।

८ औचक—अचानक, सहसा ।

गोइअवाँ—सखियों का, सहेलियों का ।

भल—भला, अच्छा ।

९ भाव—इच्छा, रुचि ।

कजरवा—काजल ।

चाव—अभिलाषा, इच्छा, चाह ।

१० जंघनि—जंघाओं को ।

गोरिया—गोरी, नायिका ।

करत कठोर—कड़ा करती है ।

कुचकोर—कुचाग्र ।

११ लाज जोरावरि ह्वै बसि—लाज के मारे विवश होकर ।

करत अकाज—न करने योग्य कार्य करती है ।

१२ भोरहि—प्रभात होते ही ।

पद अछिया—[illegible] । (मूल में पाठ नष्ट हो गया है ।)

ताप—दुःख, वेदना, जलन ।

१३ गैल—मार्ग, रास्ता।

१४ नाधुन टेर—न वंशी की ध्वनि और न नायक की टेर।

१५ देवतवा—देवता।

१६ कटील—कटक-पूरित, कॉंटोवाली।

पटनील—नीलाम्बर, नीला वस्त्र।

१७ सुगना—सुग्गा, तोता।

चोटार—तेज, पैनी, धारदार।

१८ पाथ—जल।

घन—सघन।

१९ कुसुमिया—कुसुम, फूल।

बरिया—बारी जाति की स्त्री जो पत्तलें बनाया करती है।

केरि—की।

कूर—अनसमझ, नादान।

२० नथुनिया—नथ, नाक का भूषण।

२१ दियवा—दिया, दीपक।

बारन—जलाने।

२२ पाठान्तर—'कोरवा' के स्थान मे 'कजरा' तथा 'मूॅदि न' के स्थान मे 'सुदिने'।

२३ तरुनअहिं—तरुणी स्त्री।

सूल—शूल, दुःख।

पाठान्तर—झरिगो रूख बेइलिया फुलत न फूल।

२४ दवरिया—अग्नि, दावाग्नि।

तकस—देखना, ताकना।

२६ जनि मरु...ऊन—हे नायिका, तू रोकर अपने मन को खिन्न अथवा प्राणो का त्याग मत कर।

ससुररिआ—ससुराल, श्वसुर-सदन।

२७ मितवा—मित्र।
ताकि—देखकर।
२८ अराम—आराम, उपवन, बाग।
२९ नेयतवा—निमंत्रण।
खबरिया—देख रेख।
पाठान्तर—गान करें 'खबरिया।
३० मैके—मा के घर।
३१ मदमातिल—मत्त, मदमत्त।
हथिया—हथिनी।
ठुमकत—ठुमकती हुई, ठठलाती हुई। पाठान्तर—ठुमकत।
३२ दाहिन बाम—दाएँ बाएँ, चारों ओर।
है बस काम—कामदेव के वश में होकर।

३३ लखि लखि...भेख—धनिक (नायक) को देखकर नायिका (धनिअवा) तरह तरह के वेष से शृंगार करती है।
अरसिया—आरसी।
३४ कजवा—काज, कार्य।
साधि—साधन करके, पूर्ण करके।
जुरवना—जूड़ा, केशपाश।
दिढ—दृढ़, कस कर।
३५ हरबर—घबड़ाहट से जल्दी जल्दी।
भौपथ खेद—मार्ग में बहुत कष्ट (परिश्रम हुआ)
स्वेद—पसीना, श्रमकण।
३६ कजरवा—काजल। पाठान्तर—नयकवा।
गुनरिया—सुंदरी, नीर।
३७ नयकवा—नायक, भतार।
ँगोरत—प्रतीक्षा करते हुए।

३८ वक्र—टेढ़ा।

मलिन—कलंक सहित।

विष भैया—विष का भाई चंद्रमा। समुद्र-मंथन के समय विष तथा चंद्र साथ ही साथ निकले थे इस कारण भाई भाई कहलाते हैं।

चंद बदनियाँ—चंद्रमुखी।

यथा—जन्म सिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन सकलंक।

सिय मुख समता पाव किमि, चद्र बापुरो रंग-[गो० तुलसीदास]

३९ रातुल—लाल, रक्त।

मुँगउआ—मूँगा प्रवाल।

निरस पखान—नीरस पत्थर।

मधुभरल अधरवा—मधु-पूरित ओष्ठ।

४० बेइलिया—वेलि, लता।

बिन पिय सूल करेजवा, लखि तव फूल—तेरे फूल देखकर प्रीतम के वियोग से हृदय में दुःख होता है।

४१ मलतिया—मालती की लता।

हुकरैया—हुड़क, उद्वेगकारी स्मृति।

४२ रातुल— लाल, रक्त।

टेसु—टेसू, पलास।

४३ सिख—शिक्षा।

मान—नखरा।

ठान—मुद्रा, चेष्टा, ढोंग।

पाठान्तर—'लखि' के स्थान मे 'बिन'।

४४ निचवा जोई—नीचे की ओर देखकर।

छितिखनि छोर छिगुनिआ—छोटी उँगली (कनिष्ठिका) से पृथ्वी खोदती है।

यथा—'चारु चरन नख लेखति धरिनी'। [गो० तुलसीदासजी]

४५—ठकि गौ—स्तब्ध हो गया ।

पीय—प्रीतम ।

बरोटवा—पोली; आँगन तथा द्वार के बीच का भाग ।

४६ अनख—डिठौना, काजल की बिंदी जिसे डीठ (नजर) बचाने को लगाते है । यहाँ रतिसूचक काजल के दाग से तात्पर्य्य है । अनख के स्थान मे अधर पाठ होता तो अच्छा था ।

बिन गुन माल—विना डोरी की माला ।

४७ अँगवैइया—आँगन ।

४८ सगेइया—सगे, सबधी, रिश्तेदार ।

परार—पराये ।

४९ मीड़हु—दबाना ।

५० बरिअइया—बरजोरी से, जबरदस्ती से ।

तकि—ताककर, देखकर ।

५१ गवनवा—गौना, द्विरागमन ।

५३ मनुहरिआ—मनुहार, अनुनय, विनय ।

हिमकर—ठडा करनेवाला, शीतल ।

हीव—हिय, हृदय ।

५४ जेहि लगि...जिठानि—जिसके लिये ननँद और जेठानी से विरोध किया ।

५५ बहु बेरवा—बहुत वार, अनेक बार ।

५६ सहेटवा—सकेत-स्थान ।

उड़िराइ—तारापति, चद्रमा ।

धनिया—स्त्री, नायिका, युवती ।

पाठान्तर—फिरि दुबराय ।

५७ विकरार—वेकरार, उद्विग्न ।

५८ पूरि—पूर्ण, बहुत ।

५९ अभिसरवा—अभिसार।

६१ गो जुग जाम जमुनिआ—दो पहर रात व्यतीत हो गई!

सवतिया—सौत।

६२ जोहति—देखती है।

बाट—मार्ग, रा ।

हाट—बाजार।

६३ भिनुसार—प्रभात, प्रातःकाल।

६४ खिरकिया—खिड़की, झरोखा।

६५ भिनुसरवा— भनुसार, प्रभात।

६६ हरुवे—धीमे धीमे, धीरे धीरे, हलके से।

६७ दुहु कै बार—पाठान्तर 'दै हगद्वार'।

यथा—सुंदरि सेज सँवारि के, साजे सबे सिंगार।
हग कमलनि के द्वार पै, बाँधे बंदनवार॥—(मतिराम)।

६९ बाल—बाला, नायिका।

७० प्रान पियरवा—प्राणप्रिय, प्राणों का प्यारा, प्राणवल्लभ।

७२ कहल न जाति—कहा नहीं जाता, अकथनीय।

७३ पिरनवाँ—प्राण।

७६ मत्त मतंग—मतवाला हाथी।

यथा—अली चली नवलाहि लै, पिय पै साजि सिंगार।
ज्यो मत्तंग अड़दार को, लिये जाति गड़दार॥—[मतिराम]

७७ गजपाय—गजपाल, महावत।

७९ धनि—धन्य है! नायिका

८१ जरितरिया—जरतारी का। 'होत' के स्थान में 'हेत' पाठ सार्थक है।

८३ गौन—विदेश-गमन, प्रवास।

८४ सुठि—सज्जन, नागर।
औवरिया—कोठे में, औरा।
८५ टेसुइया—टेसू, पलास।
फैलि—अवहेलना करके।
८६ सुरिति गगरिया—रीती गागर, बिना जल का खाली घड़ा।
८७ सुमिरिनियाँ—सुमिरनी, माला।
बिरहवा—विरह, वियोग।
निबाहु—निर्वाह, काटना, व्यतीत करना।
८८ बधुइआ—स्त्री, नायिका, वधू।
८९ दुअरवा—द्वार।
९१ तीर—निकट, समीप, पास।
९२ जटिल सुहीर—हीराजटित।
९४ उरवा—उर पर, वक्षस्थल पर।
हरवा—हार।
उपरेउ—उभरा हुआ, उपटा हुआ।
हेरि—देखकर।
चित्र पुतरिया—चित्रलिखित पुतली के समान।
चख—चक्षु, नेत्र। पाठान्तर—मुख।
९५ मनवा—मान, नखरा।
९८ खुरुपिया—खुरपी, घास काटने का एक औजार।
छतरिया—छप्पर, पत्तो द्वारा आच्छादित स्थान।
९९ सधवा—साध, इच्छा।
यथा—सपनेहू मन भावतो, करत नही अपराध।
मेरे मन ही मे रही, मान करन की साध॥—[मतिराम]
रात दिवस हौसे रहे, मान न ठिक ठहराय।
जेतो औगुन ढूँढ़िये, गुनै हाथ परि जाय॥—[बिहारी]

१०२ गरिअवा—गर्व, घमंड। पाठान्तर—डगरिया।

१०४ जुलुफिया—जुल्फ़।

बनसी भाइ—मछली पकड़ने के काँटे की तरह।

बारबधुइआ—वारवधूटी, गणिका।

पाठान्तर—जनु अति नील अलकिया।

बझाइ—फँसा लिया, पकड़ा।

१०५ गजरवा—गजरा, फूलों का हार।

१०६ ताकों—देखना।

वोहि—उसको।

अभिमनवा—अभिमानी नायक।

१०८ भैगा—हो गया।

पाठान्तर—'रोलिया' के स्थान में टोलवा।

यथा—दोऊ चोर मिहींचनी, खेल न खेल अघात।
दुरत हिये लपटाइ के, छुवत हिये लपटात॥—[विहारी]

१११ चितसरिया—चित्रशाला।

औधि वसरवा—अवधि-वासर, अवधि के दिवस।

११४ गोड़ वरिआ—पैरो के समीप।

पाठान्तर—छाकहु वइठ दुअरिया।

बिजन—बीजना, पंखा।

११५ बिरवना—पान का बीड़ा।

पाठान्तर—पिय निज कर विछ्वनवाँ, दीन्ह उठाय।

११६ उपटनवाँ—उबटन।

बरवै

१ सिसुस यसोस—गणेश ।
३ त्यारन—तारनेवाले ।
४ नागर—चतुर ।
५ सुवन समीर—हनुमान ।
खल दानव बन जारन—दुष्ट दैत्यरूपी बन को जलानेवाले ।
६ जलजात—कमल ।
तिमिर—अधकार ।
बिलात—विलीन होते है, दूर होते है ।
धुरवा—धुएँ के रग का वादल ।
मुरवा—मोर ।
अँकुरवा—अकुर; प्रेम का अंकुर ।
९ बाम—स्त्री ।
११ बीज—बिजली ।
सावन तीज—श्रावण शुक्ल तृतीया को झूलने की रीति है ।
१२ अहरात—रात दिन, अहर्निशि ।
१४ मया—दया, कृपा, देखो बरवा नम्बर ६६ ।
१५ दाब—अवसर, संयोग ।
१७ पयान—प्रयाण, यात्रा, विदेश गमन ।
१८ धूम—धुआँ ।
१९ उलहे—उपजे, निकले ।
मदन महीप—मदनराज, कामदेव ।
बिन परतीर—बिना फल का तीर ।
२० सुगमहिं—आसान है ।
गातहि गारन—शरीर को गलाना ।
२३ मरूके—कठिनाई से ।

२४ मरुतवा—मारुत, पवन।

२६ गाढ़—गहनता।

३1 चबाव—अपयश, झूठी चर्चा।

कुदाव—घात, छल कपट।

३२ जाग—जगह, स्थान। जन्म भर कितनी ही जगह मारा मारा फिरा किया परन्तु छाया की तरह भाग्य साथ ही रहा।

३५ छितव—पृथ्वी, क्षिति।

सुआस—आशापूर्ण, संतोषानुसार, यथेच्छ।

३७ गनत न—गिनते नहीं हैं, परवा नहीं करते।

३८ झूरि—जलन, आग, दाह।

३९ पूठि—पीठ।

४० शिवआगार—शिवालय।

४१ चौथ मयंक—भाद्रपद की चौथ का चन्द्रमा।

४६ तिनौ भरि—तृणमात्र।

४८ होत विटपहू नागे—पेड़ों के भी पत्ते गिर जाते हैं।

४९ चवाइ—चर्चा, निन्दा।

तन—तनिक।

५३ कों धो—किस स्थान में।

५६ अकह—अकथनीय।

६० अवधि—निर्दिष्ट समय तक।

अवधि—अंतकाल, मृत्यु।

दूस्तर—कठिन।

६२ भवूक—ज्वाला।

६४ दवारि—दावाग्नि।

६६ रहे प्रान परि पलकन दृग मग माहिं—प्राण पलकों पर और नयन मोहन के आगमन के मार्ग की ओर देखते रहते हैं।

६८ जक—चैन।

६९—देखो बरवा नबर १४।

७० कलवात—(संस्कृत किल) निश्चित बात।

७५ निसरे—निकले।

८० ब्यावर—जनन क्रिया।

८१ बंसी—(१) मुरली (२) मछली पकड़ने का कॉटा।

८२ चकवा पिंजरेहू सुनि, बिमुख बसात—पिजरबद्ध होने पर भी चकवा-चकवी रात्रि मे एक दूसरे से विमुख रहते है।

८३ ऊजरी—सफेद, साफ।

८४ साखि—साक्षी, गवाह।

८५ दुचिती—अनवस्थित, दो चित्तवाली।

८६ मीगुज़रद—व्यतीत होता है।

ईदिलरा—इस दिल को।

८७ नव नागर पद परसी, फूलत जौन—कवि परिपाटी के अनुसार स्त्रियो के नूपुर सुशोभित चरण-स्पर्श से अशोक कुसुमित होता है।

यथा—'पादेन नायैक्षत सुन्दरीणा संपर्कमासिंजित नूपुरेण'।

—[कालिदास]

९४ ग़र्क—डूबा, मग्न।

अज़—से।

मै—मदिरा, सुरा।

शुद—हुआ।

गीरद—पाये।

९५ ज़द—मारा।

तपीदा—व्याकुल।

मी आयद—आती है।

९६ के गोयम अहवालम पेश निगार—प्रिय से अपना हाल कैसे कहूँ।

तन्हा नज़र न आयद—अकेला मिलता ही नहीं।

९७—जब स्त्रियों के पति परदेश में होते हैं तब वे काग के घर पर बैठने वा बोलने से पति के आगमन का शकुन देखा करती हैं। यदि काग उड़ाने से उड़ जाय तो पति के शीघ्र आने का शकुन समझती हैं। यदि न उड़ें तो जानती हैं कि पति के आने में देर है। यथाः—

काग उड़ावन तिय चली मन में अधिक हरख्ख।
आधी चुरियाँ काग गर, आधी गईं करक्क॥

९९ सिगरी—समस्त। सब मेरे जीवन के पीछे पड़ी हुई है।

पिछानि—पहिचान, मेल जोल।

१०० सुधाधर—चन्द्रमा।

१०२ पनघटवा—पनघट।

१०३ करमें—हाथो के निकट।

करमें—कर्म, भाग्य।

१०४ पयपानि—दूध और जल।

सवतिया—सौत, सपत्नी।

बिलगानि—पृथक करना।

मदनाष्टक

१ निशीथे—अर्धरात्रि।

रोशनाई—ज्योति, चमक।

निकुंजे—कुंज वन में।

बला—उपाधि।

१ बा—साथ, संग।

चखन—चक्षु, आँख, लोचन।

कटितट—कमर में।

मेला—बाँधा।

सेला—साफा।
अलि—सखि।
३ छैलरा—छैला, युवक।
छरी—छड़ी, लकड़ी।
मूँदरी—अँगूठी।
खूब से खूब—अत्यन्त शोभायमान।
हस्त—हाथ।
४ दिलदार—प्यारी।
जुलफें—अलक, बालों की लट।
कुलफें—दुःख, कष्ट।
शशिकला—चन्द्रमा की ज्योति।
५ जरद—पीत, पीला।
गुलचमन—फूलबाग।
रेखता—फारसी मिश्रित भाषा में गान।
श्रुति—कान।
६ तरल—चंचल।
तरनि—कमल।
बिदारे—चीरना।
बिलसति—शोभा देती है।
७ भुजँग—भुजग, सर्प।
कमनैत—धनुष।
कै गई—कर गई।
सार—चोट, असर।
८ पठानी—पठान जाति का—रहीम।
मनमथांगी—कामदेव से पीड़ित।

फुटकर छंद तथा पद

१ अनियारे—कोरदार नुकीले।
सान—तीक्ष्णता, पैनापन।
विषारे—जहरीले।
अगाधी—अगाध, अथाह।
अन्हात हैं—स्नान करते हैं।
बोरे—डूबे, निमग्न हुए।
घाइक घनेरे—अनेकों के प्राण हरनेवाले।
२ पट—वस्त्र।
साहिबी—बड़प्पन।
३ कै—करके।
तुषार—पाला।
क्षीरनिधि—क्षीरसागर।
कलानिधि—चन्द्रमा।
४ रावरे—आप।
खोरि—खोट, कसूर।
धाँधबे—जलाने के हेतु।
५ गोहन—खिड़की।
चितई—देखा।
कमनैत—कमान चलानेवाला, धनुषधारी।
दमानक—सुन्दर तीर वर्षा।
निसानो—निसान जिस पर तीर चलाया गया है।
६ बार—देर।
द्वोय—दो टुकडे।
गेह—घर।

बीच—भेद भाव।

जिन कीनों हुतो उन हार हिया—जिन्होंने हृदय का हार कर रक्खा था।

नसिया—विमुख हो गया।

रस वार सिया—सीता के सुख के समय।

कर वार सिया पियसा रसिया—रसिक प्रीतम ने सीता जी को बाहर कर दिया।

८ अतुरीन—आतुर।

लगि—प्रेम की लगन।

९ नाधन—आरम्भ करना।

ओट—अदृश्य।

राधन—उबलना, जलाना।

पुण्य न प्यारे...अपराधन—बड़े पुण्यो से तो प्रीतम से भेंट हुई परन्तु अपराधों के कुसंग के कारण मौन को धारण करना पडा।

सुधानिधि—अमृत पूर्ण।

चितैबे की साधन—दर्शन की लालसा।

१० धर—धरा, पृथ्वी।

खपजासी—नाश होगा।

खुरसाण—सुलतान, बादशाह।

अमर—राणा अमरसिंह।

नहचो—निश्चय, विश्वास।

महाराणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह ने जहाँगीर से परास्त होने पर खानखाना को निम्नलिखित दोहे लिखे थे। जिसके उत्तर में रहीम ने इस दोहे को लिखा था।

हाड़ा कूरम राव वड़, गोखाँ जोख करंत।
कहियो खाना खान ने, वनचर हुआ फिरंत॥

तुवरासूँ दिल्ली गई, राठोड़ा कनवज ।
राणा पयं पै खान ने, वह दिन दीसे अज ॥

११ तारायन—तारागण ।

गैन—दिन ।

कहा जाता है कि इस दोहे के उत्तरार्ध की पूर्ति किसी स्त्री ने की है।

१२—भक्तमाल में लिखा है कि जब श्रीनाथजी रहीम को दर्शन देने स्वयं पधारे थे तब उनकी छबि का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है ।

काछै—पहिने हुए, धारण किए हुए ।

पिछौरी—दुपट्टा ।

साल—शाल ।

विधु बाल—द्वितिया का चंद्र, बाल चन्द्रमा ।

विसाल—दीर्घ ।

छीनी—हरण किया ।

पुरइन—कमल पत्र ।

हाल—दशा, अवस्था ।

१३ उनमानि—अनुहार, समानता ।

दसननद्युति—दातो की चमक ।

चपला—बिजली ।

बसुधा—पृथ्वी ।

बसकरी—खतम कर दी ।

सुधा पगी बतरानि—अमृतमयी वार्तालाप ।

चढ़ी रहे—विस्मरण नहीं होती ।

अनुदिन—प्रतिदिन ।

बानि—स्वभाव, टेव ।

शृंगार सोरठा

१ यथा—नैन जोर मुख मोरि हँसि, नेसुक नेह जनाय ।
आगि लेन आई हिये, मेरे गई लगाय ॥—मतिराम
फेरि कछुक करि पौरि ते, फिरि चितई मुसकाइ ।
आई जावुन लैन को, नेहहि चली जमाइ ॥—बिहारी

२ तुरक गुरक—असुरो के गुरु शुक्र; वीर्य ।
सुरगुरु—देवताओं के गुरु वृहस्पति; बुद्धि ।
बिनदेह को—अनग; कामदेव ।

चातक जातक—चातक का 'पी' 'पी' शब्द; पी, पिय, प्रेमी। प्रोषितपतिका का वर्णन है। काम वासना से बुद्धि क्षीण हो जाने पर और प्रीतम के दूर होने के कारण कामदेव को अपना प्रकोप दिखाने का अवसर मिला है ।

३ कर विहीन—दीपक जिसके हाथ नहीं है ।

अकबर बादशाह ने समस्या दी थी "किहि कारन डोल मे हालत पानी" उसकी पूर्त्ति गग ने इसी भाव पर की थी—

एक समैं जल आनन को घर सों निकली अबला ब्रजरानी ।
जात संकोल में डोल भरो, जल खेंचत में अँगियाँ मसकानी ॥
देखि सभा छतियाॅ उघड़ीं कवि गंग कहे मनसा ललचानी ।
हाथ विना पछतात रह्यो, इहि कारन डोल में हालत पानी ॥

४ दुति—कान्ति, द्युति, तेज ।

यथा—

(१) सोहे तरंग अनग की अंगनि ओप उरोज उठी छतियाॅ की ।
जोबन जोति सों यों दमके, उसकाइ दई मानो बाती दिया की ॥
—रसखान

ऐसे में आवत काहू सुने हुलसे तरके तरकी ॲगिया की।
यों जगि जोति उठी तन की उसकाइ दई मानो वाती दिया की ॥

—रसखान

५ भावार्थ—वेदना की रीति सर्वत्र एक सी नहीं होती। किसी के मे पीड़ा होती है किसी को नहीं होती।

६ जलज—कमल।

मधुकर—भ्रमर, मधुप, भौरा।

अरघा—अर्घ्य पात्र, अर्घ अथवा अंजलि देने का पात्र।

भावार्थ—श्वेत नेत्रों मे काली काली पुतलियो की शोभा श्वेत कमल मे भौरे के समान अथवा चॉदी के अर्घ्यपात्र मे शालग्राम की मूर्ति के समान है।

मुद्राराक्षस—सटिप्पण-भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र ने विशाखदत्त के संस्कृत नाटक मुद्राराक्षस का अनुवाद गद्य—पद्यमय हिन्दी भाषा में किया है। विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त लाभप्रद है मूल्य १)

(*a*) This book is recommended for (1) Vernacular Middle School Libraries for boys and for. (2) Libraries in Intermediate colleges by the Director of Public Instructions, United Provinces —*Vide Order No. T. B. |2|3. 25th April, 1931.*

(*b*) Prescribed as a Text-book in Hindi an Advance Language course for the Upper Middle Examination for girls by the Director of Public Instruction. U. P.

पद्माकर की काव्य-साधना—(लेखक—अखौरी गगाप्रसादसिंह) यह ग्रन्थ हिन्दी के आलोचना-साहित्य का अद्वितीय रत्न है। इसमें पद्माकर का जीवन-वृतान्त, उनके ग्रन्थों का आलोचनात्मक परिचय, उनकी काव्य-साधना की मीमांसा, और अन्त में उनकी सरस सूक्तियों का संग्रह दिया गया है। मूल्य सजिल्द पुस्तक का १।।) मात्र।

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव—(लेखक—श्रीयुत् देवीप्रसाद जी 'प्रीतम') श्रीकृष्ण जी की जन्म-सबंधिनी कथाओं का एक खासा दर्पण है। साहित्य-मर्मज्ञों के लिए अलङ्कारो की छटा की भी कमी नहीं है। मू० ।≶)

महात्मा-नन्ददासजी कृत भ्रमर-गीत—मूल्य ≶)

केशव-कौमुदी (रामचन्द्रिका सटीक)—२ भाग—मूल्य ४)

रहीम-रत्नावली—(संपादक—पं० मयाशंकर जी याज्ञिक) रहीम की कविताओं का अनोखा और सब से बड़ा संग्रह है। मूल्य १।।)

गुलदस्तए बिहारी—(लेखक—देवी प्रसाद 'प्रीतम') यह 'गुलदस्तए बिहारी' बिहारी-सतसई के दोहों पर रचे हुए उर्दू शेरों का संग्रह है। सचित्र संस्करण का मूल्य १।।)

अनुराग वाटिका—(प्रणेता वियोगीहरि जी) इस पुस्तक मे वियोगीहरि जी प्रणीत ब्रज भाषा की कविताओ का संग्रह है। कविता के एक-एक शब्द अमूल्य रत्न है, द्वितीय संस्करण—मूल्य ।-)

तुलसी-सूक्ति-सुधा—(सं० श्रीवियोगीहरि जी) गोस्वामी तुलसी-दास जी की उक्तियो का संकलन है। ५०० पृष्ठो की पुस्तक—मूल्य २)

झरना—(प्रणेता—श्रीजयशंकर प्रसाद) छायावादी कविताओ का संग्रह है। मूल्य ।=)

भावना—(प्रणेता—श्रीवियोगीहरि जी) यह एक आध्यात्मिक गद्य-काव्य है। इसमे ५० निबध है। प्रत्येक निबंध मुर्दे को जिलाने के लिए अमृत है। द्वितीय सस्करण—मूल्य ॥=)

कुसुम-संग्रह—(लेखिका—श्रीमती वंग महिला। सं० प्रो० रामचन्द्र शुक्ल B H. U.) इसमें ऐसी शिक्षाप्रद आख्यायिकाओं का समावेश है जिनको पढ़कर साधारणतया सभी स्त्रियो के आदर्श उच्च हो सकते हैं। सचित्र सात रंग-बिरंगे चित्रो से विभूपित—मूल्य १॥)

दान-लीला—(सं० जवाहर लाल चतुर्वेदी) यो तो दान-लीला कई स्थानो से प्रकाशित हो चुकी है, किन्तु इतना बड़ा और इतना अच्छा सस्करण कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुआ है। श्री हरिराय जी की उक्त दान लीला कितनी सरस और कितनी सुन्दर-रचना है उसे आप स्वय ही देखकर कहेगे, इस विषय पर हमारा विशेष कहना आत्मप्रशंसा होगी। अष्ट-छाप के गण्यमान्य महानुभावों की सरस-रचनाओं का भी सुन्दर संग्रह दिया गया है। इसके अतिरिक्त अनेक-विद्वानो की सम-भावोद्योतक सरल-सूक्तियाँ दी गई है। पुस्तकान्त मे भर पूर शब्दार्थ, चोड़िया और श्री गोकुल नाथ जी का वचनामृत भी दिये हैं जिसमें सब श्रेणी के पाठक और वैष्णव लाभ उठा सके। छपाई-सफाई सुन्दर। मूल्य केवल ।-)